

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186076

UNIVERSAL
LIBRARY

QUP-67-11-1-68-5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 338.91

Accession No.

Author S27 D

Author जयसेना मोहनलाल .

Title द्वितीय पंचवर्षिय योजना .

This book should be returned on or before the date last marked bel

द्वितीय पंचवर्षीय योजना

कुछ रचनात्मक सुझाव

लेखक

मोहनलाल सक्सेना

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्राइवेट लि०

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

आगरा

प्रकाशक

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं० प्राइवेट लि०

होस्पीटल रोड,

आगरा ।

हिन्दी संस्करण : १९५८

मूल्य : ३'००

मुद्रक

कल्याण प्रिण्टिङ्ग प्रेस,

राजा मण्डी,

आगरा ।

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ
१. योजना की रूपरेखा	१
२. योजना का परिमाण एवं साधन	७
३. श्रम कर	१४
४. सार्वजनिक ऋण तथा अल्प बचत योजना	१६
५. मितव्ययिता और कार्य क्षमता के प्रयत्न	२५
६. अन्नोत्पादन	३३
७. बागवानी	३८
८. पशुपालन	४५
९. ग्राम एवं लघु उद्योग	५२
१०. स्वास्थ्य	५७
११. गृह-निर्माण तथा सड़कें	६३
१२. शिक्षा	६६
१३. निष्कर्ष	७२
१४. श्रम और सहकारी संगठन	८०
१५. बेरोजगारी और द्वितीय पंचवर्षीय योजना	८७
१६. द्वितीय पंचवर्षीय योजना और विविध सुझाव व निष्कर्ष	१०६
१७. इस फिज़ूलखर्चों को बन्द करो	१२४
अनुक्रमणिका	१३४
कविता	१४१

दो शब्द

प्रकाशकों ने भाई मोहनलाल जी सक्सेना की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में तथ्य, विचार और विद्वत्तापूर्ण विचारोद्दीपक अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी और जनता का महान् उपकार किया है।

सक्सेना जी पुराने और प्रतिष्ठित कांग्रेसी हैं। कोई चालीस साल पुराने। उनके जीवन का इतिहास कांग्रेस द्वारा स्वदेश और समाज की निस्वार्थ और निष्कलङ्क सेवा का सुन्दर सङ्गीत है। उन्होंने जीवन भर पद-प्रतिष्ठादि का मोह और लोभ छोड़ कर अपने सिद्धान्तों पर अटल रहते हुए जनता की सेवा करने का मार्ग अपनाया है।

वे १९२४ से धारा सभाओं के सदस्य रहे हैं। यू० पी० कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष (प्रान्त-पति) भी रह चुके हैं। नेहरू जी के केन्द्रिय मन्त्रि-मण्डल में पुरुषार्थी और पुनर्वासन मन्त्री भी रह चुके हैं।

स्वस्थ और सच्चे मतभेद के आधार पर मन्त्रिपद को मिट्टी के ढेले की तरह ठुकरा कर उन्होंने देश के विकास और नव-निर्माण की समस्या का व्यापक और गहरा चिन्तन, मनन और अध्ययन किया। अपने इस अध्ययन के फलस्वरूप देश के प्रमुख अंग्रेजी दैनिक में उन्होंने अनेक लेख लिखे। इन्हीं लेखों को अन्त में उन्होंने पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिया।

उसी अंग्रेजी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद आगरा के प्रसिद्ध प्रकाशक शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड ने हिन्दी भाषी जनता के लिए सुलभ कर दिया है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का कोटि-कोटि जनता के भले बुरे पर भारी प्रभाव अनुकूल और प्रतिकूल जैसा भी हो पड़ता है। उसकी जानकारी प्राप्त करके उस पर विचार करना प्रत्येक जन-सेवक का परम पावन कर्त्तव्य है।

मुझे आशा और विश्वास है कि हिन्दी के पाठक इस पुस्तक को पढ़ कर देश के नव-निर्माण के महान् यज्ञ में कम से कम बौद्धिक और मानसिक योगदान करने का आत्म सन्तोष अवश्य प्राप्त करेंगे।

श्रीकृष्णदास पालीवाल

“मैं इस बात का हृदय से समर्थक हूँ कि जिस योजना में देश के कच्चे माल का तो लाभ उठा लिया जाता है, किन्तु अधिक शक्तिशाली जन शक्ति की उपेक्षा कर दी जाती है, वह अपूर्ण है और उससे मानव समानता का लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकता ।

“सही योजना वही है जिसमें भारत की सम्पूर्ण जन शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग और कच्चे माल को बहुसंख्यक गाँवों में वितरण करने का विधान किया जाय । यह नहीं कि कच्चे माल को विदेशों में भेज दें और फिर बनी हुई चीजों को अंधाधुन्ध दामों पर खरीदें ।”

×

×

×

×

“भौतिक सुखों और उनकी अभिवृद्धि के लिए सतत प्रयास एक बड़ा अभिशाप है और मैं इस बात को दृढ़ता के साथ कह सकता हूँ कि स्वतः यूरोप-निवासियों को भी अपना दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा, यदि उन्हें उन सुखों के नीचे नहीं दब मरना है, जिनके आज वे दास हो गये हैं । हो सकता है कि मेरा अनुमान गलत हो लेकिन मैं यह जानता हूँ कि भारत भौतिक ऐश्वर्य की ओर दौड़कर मृत्यु को ही गले लगायेगा । हमें अपने हृदय पर तो यह आदर्श वाक्य अंकित करना चाहिए—सादा जीवन और उच्च विचार ।”

महात्मा गांधी

भूमिका

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रकाशन के बाद ही उस पर विचार करने के लिए अनेक समितियाँ नियुक्त की गई थीं, जिनमें दोनों सदनों के सदस्य सम्मिलित थे । उन समितियों द्वारा विचारणार्थ योजना के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित मैंने अनेक विचार रले थे । इस योजना की मुझ पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसके सम्बन्ध में मैंने अपने विचार 'नैशनल हेरल्ड' तथा अन्य पत्रों में दे दिये थे । इन बातों से मेरा उद्देश्य यह था कि इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न की ओर लोगों का ध्यान केन्द्रित कर योजना के सम्बन्ध में स्वस्थ वहस की शुरुआत करा सकूँ ।

मैंने अपने लेखों में योजना के दोष देखने का ही प्रयत्न नहीं किया है अपितु कुछ ठोस और रचनात्मक सुझाव भी दिये हैं । मुझे इस बात का अभिमान नहीं है कि मेरी कुछ आशंकाएँ सही सिद्ध हुई हैं और न मुझे इस बात से निराशा है कि मेरे अधिकांश सुझावों पर विचार ही नहीं किया गया । बहरहाल, मैं अपने लेखों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने के लिए इसीलिए तत्पर हुआ, चूँकि योजना नमनीय है, इसमें प्रतिवर्ष संशोधन हो सकते हैं । अतः ये लेख केवल सामयिक दिलचस्पी की चीज नहीं, अगली योजनाओं के अध्ययन और निर्माण में भी सहायक हो सकते हैं । जो भी हो, इन लेखों के द्वारा पाठक इस योजना को दूसरे दृष्टिकोण से देखने का अवसर अवश्य प्राप्त कर सकेंगे ।

इस भूमिका के साथ, गत वर्ष मेरे कुछ लेखों का पहला संग्रह अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ था । उसी समय से कुछ मित्रों का आग्रह था कि उनका हिन्दी अनुवाद छपे, परन्तु कुछ कारणों से उसका प्रबन्ध अब तक न हो सका ।

आज योजना डाँवाडोल हालत में है । कई संकटों से ग्रस्त है और उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया जा रहा है, मेरा विश्वास है यदि मेरे सुझाव माने गये होते, तो हमारी कठिनाइयाँ बहुत कम हो जातीं । अब भी उन्हें कार्यान्वित करनेसे योजना बहुत कुछ सफल की जा सकती है । कुछ और आवश्यक लेखों का संग्रह कर इस हिन्दी संस्करण को सामयिक बना दिया गया है ।

ग्रन्त में मैं अपने उन मित्रों का आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे लेखों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराने में मेरी सहायता की है ।

लखनऊ

२६-१-५८

बिनीत,

मोहनलाल सक्सेना

अध्याय १

योजना की रूपरेखा

द्वितीय पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट १५ मई १९५६ को लोकसभा में प्रस्तुत की गई और दोनों सदनों में उस पर विचार भी हो चुका है। इससे पूर्व कि योजना के गुण-दोषों पर विचार प्रकट करूँ अथवा उसके सम्बन्ध में अपने सन्देहों एवं मत-भेदों को प्रकट करूँ, यह आवश्यक समझता हूँ कि पाठकों के सम्मुख उन विचारों को संक्षेप में रख दूँ जो मैंने अपने व्याख्यानों में लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किये थे। मैंने कहा था:—

‘मैंने इस योजना का अध्ययन पूरी ईमानदारी और अनुनय के साथ किया है और इस सम्बन्ध में जो टीका की है अथवा सुझाव दिये हैं वे भी सच्चाई, संजीदगी तथा उन सब जिम्मेदारियों को ध्यान में रख कर दिये हैं जो मेरे कन्धे पर उस सदन के सदस्य होने के नाते आई हैं, जो ३६ करोड़ भारतीयों का भाग्य-विधाता है अथवा उस प्रमुख राजनीतिक संस्था के सदस्य होने के नाते आई हैं, जिसके भण्डे के नीचे मैंने जीवन का लगभग आधा भाग जन-कल्याण में लगा दिया है।……’

मैं न तो अर्थशास्त्री हूँ, न विशेषज्ञ हूँ और न संख्याशास्त्री होने का ही दावा करता हूँ। मैं तो जनता की उन समस्याओं को ध्यान में रख कर बात कहता हूँ जिनका सामना उन्हें आये दिन करना पड़ता है। मैंने उन समस्याओं का अध्ययन किया है और अपने थोड़े से अनुभव के आधार पर एक निर्णय पर पहुँचा हूँ।……मैं एक विशेषज्ञ के रूप में नहीं, अपितु सह-तीर्थयात्री के रूप में बोल रहा हूँ, जिसने पहले की प्रतिज्ञाओं को पूरा करने का संकल्प कर रखा है। इन प्रतिज्ञाओं को लाखों-लाख जनता के कष्ट और त्याग ने पवित्र बना दिया है, उन नेताओं ने पवित्र बना दिया है जिन्होंने इन्हें पूरा करने में प्राण त्याग दिये। ये नेता हमारी कथनी और करनी के अन्तर को देख कर चिन्तित थे। इससे भी अधिक चिन्ता उन्हें जनता के बढ़ते

हुए असन्तोष और व्यग्र भाव से थी, जिसका प्रमाण कुछ ग्राम चुनावों में कांग्रेस की हार के रूप में हुआ था ।.....मैं एक विशेषज्ञ की सुलभ परिस्थिति में नहीं हूँ जो अपनी सुविधा से आ सकता है और अपनी सुविधा से जा सकता है । जैसा कि मैंने प्रधान मन्त्री को लिखा था कि विशेषज्ञ आयें और चले जायें और मित्र भी नये और पुराने हमसे जुदा हो जायें, किन्तु जब तक समान लक्ष्य की सिद्धि नहीं हो जाती, सह-तीर्थयात्रियों को एक-दूसरे का सहारा अनिवार्य है । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने हम सबका समान लक्ष्य निर्धारित कर दिया है । समय-समय पर इसकी व्याख्या अलग-अलग तरीके से की गई है, किन्तु मूल लक्ष्य वही रहा है—अर्थात् देश की ३६ करोड़ जनता को राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता दिलाने के साथ-साथ उसकी गरीबी, भुखमरी, बीमारी तथा अकाल को दूर करना । इतना ही नहीं, हमने आर्थिक विषमता तथा शोषण को तो जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिए कमर कस ली है । हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग महात्मा गांधी ने दिखा दिया है, वह है सत्य और अहिंसा का, सादा जीवन तथा उच्च विचार का और स्वावलम्बन तथा सहयोग का मार्ग । एक शब्द में हम उसे 'सर्वोदय' कह सकते हैं । उस दिन प्रधान मन्त्री ने अपने भाषण में भारत के महान्तम सपुत (भगवान् ब्रह्म) की कोमल वाणी की याद दिलाई थी जो संकट और श्रम से परिपूर्ण एवं वैज्ञानिक व तान्त्रिक प्रगति के विगत ढाई हजार वर्षों के काल में हमें शान्ति और सहनशीलता के पथ पर चलने के लिए इंगित करती रही है । मैं बड़ी नम्रता से पूछता हूँ कि क्या उस सन्त (महात्मा गांधी) की वाणी भी आपको याद है जो आठ वर्ष पूर्व अवरोद्ध कर दी गई थी ? क्या वह अब हमारे कानों में नहीं गूँजती और अपने निर्देशित मार्ग पर चलने के लिए इंगित नहीं करती !

विशेषज्ञों अथवा दूसरे लोगों का मत विपरीत हो सकता है, किन्तु मैं उन लोगों में से हूँ जिनका विश्वास है कि हम अपनी भूलों अथवा अन्य परिस्थितिवश पथ-भ्रष्ट भले ही हो जायें किन्तु अन्त में हमें राष्ट्रपिता द्वारा दिखाये गये मार्ग पर आना ही पड़ेगा । ऐसा कहने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि मैं इस योजना को गांधीवादी दृष्टिकोण से अथवा किसी विशेष राजनीतिक अथवा सामाजिक दर्शन से आँक रहा हूँ । मैं योजना को केवल एक ही दृष्टिकोण से जाँचना चाहता हूँ कि यह जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति कहाँ तक करता है और उनकी मूलभूत आवश्यकताओं को कहाँ तक पूरा करता है ।

में योजनाओं के दावों की भी जाँच करूँगा कि उनकी पूर्ति किस सीमा तक हो सकती है। हमें चाहिए कि हम योजना के प्रति सही रुख अपनायें और स्वस्थ आलोचना को जन्म दें।

हमारी प्रथम पंचवर्षीय योजना देश की अन्न तथा वस्त्र की समस्या को हल करने में एक बड़ी सीमा तक सफल हुई है। यह भी दावा किया गया है कि इस योजना से हमारी राष्ट्रीय आय १८ प्रतिशत बढ़ गई है और प्रति व्यक्ति की औसत आय में ११ प्रतिशत की वृद्धि हो गई है। यह भी बताया गया है कि हमने लक्ष्य से अधिक उत्पादन किया है किन्तु साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि बेकारी में भी वृद्धि हुई है। मकानों की तंगी पहले जैसी ही बनी हुई है और डाक्टरी सहायता से तो देश के अधिकांश व्यक्ति वंचित ही रह जाते हैं। प्रथम पंचवर्षीय योजना में नौकरियों की सुरक्षा तथा उनमें विद्यमान भ्रष्टाचार को दूर करने पर पूरा बल दिया गया था, किन्तु इस दिशा में बहुत कम प्रगति हुई है। यह स्वाभाविक है कि जनता प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद द्वितीय योजना से और अधिक आशाएँ लगाये। वह सोचे कि उनकी समस्याओं का सन्तोषजनक हल निकल आयेगा, जिनका रोजमर्रा के जीवन पर जबरदस्त असर पड़ता है।

बेकारी

गत पाँच वर्षों में बेकारी की संख्या निश्चित रूप से बढ़ी है। प्राप्य आँकड़ों के अनुसार केवल शहरी क्षेत्र में ही २५ लाख बेकार हैं। यद्यपि योजना के मसविदे में बताया गया है कि प्रथम योजना की अवधि में ग्रामीण बेकारी में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है, किन्तु मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि ग्रामीण क्षेत्र से सजीव सम्पर्क रखने वाले इस मत से सहमत नहीं होंगे। वहाँ की स्थिति शहरी क्षेत्र से ज्यादा अच्छी नहीं है। योजना के मसविदे में नीचे लिखी हुई तालिका दी हुई है। यदि हमको द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में ही बेकारी को जड़-मूल से उखाड़ फेंकना है तो इस तालिका के अनुसार हमें नई जगहें और निकालनी होंगी।

(संख्या लाखों में)

	शहरी क्षेत्र में	ग्रामीण क्षेत्र में	योग
श्रमिक वर्ग की नई भर्तियों के लिए	३८	६२	१००
पुराने बेरोजगारों के लिए	२५	२८	५३
	६३	९०	१५३

योजना के मसविदे में आगे कहा गया है कि यदि हमने ऊपर लिखे हिसाब के अनुसार नई जगहें कर भी लीं, तो भी हमारे सामने उनके कम वेतन की उतनी ही गम्भीर समस्या बनी ही रहेगी ।

उचित हल के ढूँढ़ने में आने वाली कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए नियोजक इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि “यह आशा बना लेना गलत होगा कि दूसरी योजना के अन्त तक सभी व्यक्तियों के लिए रोजगार की व्यवस्था हो जायगी । इस लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए द्वितीय योजना के पश्चात् भी निरन्तर योजनाबद्ध प्रयत्न करते रहना आवश्यक होगा ।”

नियोजकों ने हिसाब लगाया है कि द्वितीय योजना काल में लगभग ८० लाख व्यक्तियों को और काम मिल सकेगा । इनमें से २१ लाख निर्माण विभाग में और ३.६६ लाख दूसरे विभागों में खपाये जा सकेंगे । इसमें ४.३४ लाख सरकारी नौकरियाँ भी सम्मिलित हैं । शेष २७.०४ लाख के लिए व्यापार तथा वाणिज्य में गुंजाइश रखी गई है । लगभग ५२ प्रतिशत को दूसरे विभागों में माना गया है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि योजना के आँकड़ों के अनुसार भी लगभग आधे व्यक्ति निठले ही रहेंगे । योजना निर्माता बेकारी की समस्या के महत्त्व के विषय में अथवा इस समस्या के हल से सम्बद्ध कठिनाइयों के विषय में चाहे कुछ भी कहें किन्तु प्रश्न उठता है कि इन योजनाओं के बनने से देश की जनता को क्या लाभ हुआ, यदि स्वतन्त्रता के पन्द्रह वर्ष के बाद भी देशवासियों को रोजगार मिलने की गारण्टी न हुई, जिसका उल्लेख हमारे संविधान के मौलिक अधिकारों तथा नीति निर्देशक सिद्धान्तों के अन्तर्गत किया गया है । राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी यह देश की बड़ी भारी हानि है कि देश के ७० लाख व्यक्ति निठले ही बने रहें । नागरिकों के एक बड़े भाग को मजबूरन बेकार रहना पड़े, यह देश के लिए उसी प्रकार हानिकारक है, जिस प्रकार लकवा मारा हुआ अंग मानव शरीर के लिए ।

बेकारी के सम्बन्ध में मैंने योजना आयोग के सामने अपना जो मत रखा था, उसे यहाँ लिख देना ठीक ही प्रतीत होता है :—

“जिस देश में ७५ प्रतिशत व्यक्तियों को मजबूरन पूरे वर्ष और काफी लोगों को वर्ष में कई महीने बेकार रहना पड़े, उस देश की दशा अत्यन्त ही शोचनीय समझनी चाहिए । इस बेकारी से मनुष्य के दस अरब काम के दिन बर्बाद हो जाते हैं । यदि प्रति नफरी का मूल्य १२ आने भी लगाया जाय तो साल भर में इसका योग लगभग ७५०

करोड़ रुपया बैठेगा, यह रकम पाँच साल में ३७५० करोड़ रु० के लगभग होगी ।..... इस विकट आर्थिक हानि के अतिरिक्त बेकारी से देश का जो नैतिक और समाजिक ह्रास होता है, उसका तो अनुमान लगाना ही कठिन है । बेकारी, गरीबी तथा विनाश परस्पर सम्बद्ध हैं । बेकारी के कारण नैतिक पतन होता है और उससे जो असन्तोष फैलता है उसके परिणाम बड़े भयंकर होते हैं । देश के इतने श्रम और कौशल का उपयोग न होने के कारण देश के साधन अविकसित रह जाते हैं और देश में गरीबी और लाचारी बढ़ती ही चली जाती है ।”

देश के सर्वोत्कृष्ट हित की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हम देश के लाखों लोगों को अधिक दिन तक बेकार न रहने दें अन्यथा बड़े संकट का सामना करना होगा । अतः आज सबसे पहले ‘बेकारों को रोजगार’ हमारा नारा होना चाहिए । यही हमारी नीति हो और यही हमारा कार्य-क्रम, और हम देखें कि द्वितीय योजना के अन्त तक बेकारी दूर हो जाय ।

अपने इस बात के समर्थन में मैं श्री सी० डी० देशमुख के गत सितम्बर के अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के कथन को उद्धृत कर रहा हूँ । आपने कहा था :—

“इस समय हमारे सामने नदी-घाटी योजनाएँ और औद्योगिक विकास की योजनाएँ हैं जिनसे कुछ वर्षों बाद हलके दर्जे का काम मिल जायगा ।.....हमें जो अच्छा लगे उसका चयन करना है । हमारा लक्ष्य स्पष्ट है । हमें बेकारों को रोजगार देने का प्रश्न लेना है । हमारी राष्ट्रीय आय १५ से १८ वर्ष तक भले ही जैसे की तैसी रहे किन्तु देश में सिर फुटौअल न होगी । किन्तु यदि देश में बेरोजगारी बनी रहती है तो सिर फुटौअल बिना हुए न रहेगी ।” इस सम्बन्ध में मजे की बात यह है कि हमारे योजना आयोग ने श्री देशमुख की चेतावनी पर कुछ भी ध्यान न देकर राष्ट्रीय आय बढ़ाने वाली योजनाओं को ही प्राथमिकता दी है, भले ही देश में सिर फुटते रहें । इस सिर फुटौअल से देश की उन्नति में बाधा पड़ेगी और अच्छी से अच्छी योजना भी लाभदायक सिद्ध न हो सकेगी । मुझे आशा है कि और भी अच्छे सुझाव आयेंगे, जिनके अनुसार इस योजना में सुधार किया जायगा और योजना आयोग के अनुमान के अनुसार १५.५ लाख बेरोजगारों को रोजगार देने की व्यवस्था की जायगी । बेरोजगारी की समस्या के हल के सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव दिये हैं उनको यहाँ दुहराना मैं ठीक नहीं समझता, किन्तु मैं नियोजकों

का ध्यान अपनी 'मजदूर-कर्मचारी सहकारी संस्थाओं' की योजना की ओर आकृष्ट करना चाहता है, जिनके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र में लगभग ५० लाख आदमियों को सप्ताह में कम से कम ५ दिन काम अवश्य मिल सकेगा। इस योजना के काल में कर्ज और अनुदान के द्वारा प्राप्त २५ करोड़ रुपये के व्यय का अनुमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि नियोजकों ने इस सुभाव पर कोई ध्यान नहीं दिया और न उन्होंने ग्रामीण क्षेत्र की बेकारी को दूर करने के लिए कोई दूसरे उपाय ही प्रस्तुत किये।

राष्ट्रीय आय

द्वितीय पंचवर्षीय योजना का सर्व प्रथम उद्देश्य देश की राष्ट्रीय आय में क्रमशः वृद्धि बताया गया है ताकि देशवासियों के रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाया जा सके।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के काल में इसमें २५ प्रतिशत की वृद्धि की जायगी।

प्रथम योजना काल में हिसाब लगाया गया है कि राष्ट्रीय आय में १८ प्रतिशत की वृद्धि हुई है और २० अरब रुपये का व्यय हुआ है। द्वितीय योजना का व्यय प्रथम योजना से लगभग तिगुना आँका गया है। अब स्वभावतः प्रश्न उठता है कि व्यय के अनुसार ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि क्यों नहीं होगी ?

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यदि प्रथम योजना के अनुरूप ही रुपया द्वितीय योजना में लगाया गया है तो राष्ट्रीय आय में २५ प्रतिशत से भी अधिक वृद्धि होनी चाहिए। इसका मतलब यही है कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने की ओर, और बेकारी को दूर करने की ओर उतना ध्यान और महत्त्व नहीं दिया गया है जितना आवश्यक था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में खर्च की मद्देन तीसरी लक्ष्य की पूर्ति को ध्यान में रख कर की गई हैं अर्थात् तेजी से औद्योगीकरण हो ; विशेष जोर मूलभूत बड़े उद्योगों पर रहे। यदि योजना के अनुसार राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है तो भी यह प्रश्न हल हुए बिना ही रह जाता है कि निम्न वर्ग की दशा में सुधार कैसे होगा, विशेष रूप से उन बहुसंख्यक लोगों की, जिनकी दशा सुधारने की जिम्मेदारी योजना ने खुद उन्हीं पर छोड़ दी है।

अध्याय २

योजना का परिमाण एवं साधन

द्वितीय पंचवर्षीय योजना जनता के सामने कुछ दिनों से है। अनेक दृष्टिकोणों से इस पर विचार किया जा चुका है और समाचार पत्रों एवं भाषणों में इसके पक्ष एवं विपक्ष में बातें कही गई हैं। योजना पर कितना व्यय किया जाय, इस विषय में विभिन्न मत हैं किन्तु योजना के परिमाण के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भी कमी न की जाय, इस सम्बन्ध में प्रायः सभी एकमत हैं। विभिन्न राज्यों तथा केन्द्रीय मन्त्रालयों से जो सुझाव आये, उनके अनुसार योजना के व्यय में ८००० करोड़ रुपये का खर्च और बढ़ जाता है। इस सम्बन्ध में सलाह दी गई कि भले ही योजना की अवधि ५ वर्ष से ६ अथवा ७ वर्ष कर दी जाय, किन्तु योजना के परिमाण में काट-छाँट न की जाय। यद्यपि यह जनता की एक स्वर से माँग है कि योजना के परिमाण में किसी प्रकार की भी कमी न की जाय, किन्तु उसके साधनों के जुटाने के सम्बन्ध में, विशेषकर अतिरिक्त कर, विदेशी सहायता तथा घाटे के बजट के विषय में मतभेद रहे हैं।

अतिरिक्त कर

इस योजना में व्यवस्था की गई है कि अतिरिक्त कर के द्वारा ४५० करोड़ रुपये वसूल किये जायँ। नियोजकों और विशेषकर केन्द्रीय वित्त मन्त्री ने गत वर्ष योजना के प्रकाशित होते ही अतिरिक्त करों के जिसमें अन्न इत्यादि जीवनपयोगी वस्तुओं पर भी कर शामिल हैं, लगाने की आवश्यकता पर बार-बार जोर दिया। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने कर जाँच आयोग तथा अर्थशास्त्री मंडल का अभिमत दिया है। किन्तु उन्होंने उन महत्वपूर्ण शर्तों को नजरअन्दाज कर दिया जिनकी पूर्ति करना अतिरिक्त कर लगाने के पूर्व आवश्यक है। कर जाँच आयोग ने अतिरिक्त कर लगाने के पूर्व विकास कार्यों से भिन्न कार्यों के खर्च में कमी करने पर जो जोर दिया है, वह ठीक ही है। इससे रुपये में साढ़े

नौ आने की कमी हो जाती है। सामाजिक सेवाओं पर तीन आना रुपया और आर्थिक विकास पर साढ़े तीन आना रुपया व्यय होगा। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि ईमानदार करदाताओं पर अतिरिक्त कर लगाने से पूर्व प्रशासन की मशीन को इतना कठोर कर दिया जाय ताकि करचोर कर देने से छूटने न पावें। मैं यहाँ अपने मत की पुष्टि में कर जाँच आयोग की रिपोर्ट के अंश को उद्धृत किये देता हूँ:—

“शासन में कुशलता और सरकारी खर्चों में कमी होने पर लोगों को कर के बोझ में बढ़ोतरी अखरती नहीं। सरकारी खर्च में कमी का यही मतलब है कि जनता के पैसे का उपयोग अच्छी तरह से हो और टैक्स से प्राप्त रुपया जिस मद में लगाया गया हो, उसका अच्छा प्रतिफल निकले।”

केन्द्रीय वित्त मन्त्री ने जितना उत्साह अतिरिक्त कर लगाने में दिखलाया है, यदि वे ऊपर दी हुई चेतावनी और सुझावों के अनुसार कार्य करने में आधा भी उत्साह दिखाते तो मुझे विश्वास है कि द्वितीय योजना के व्यय तथा आय के साधनों में इतना अधिक अन्तर न होता। ऐसा अनुमान है कि यदि आयोग द्वारा बताये हुए उपायों के अनुसार संजीदगी से कार्य किया जाता तो राज्यों तथा केन्द्र के सरकारी खर्चों में कमी करके तथा फिजूलखर्ची को रोक कर साल भर में ५० या ६० करोड़ रुपया सरलता से निकल आता। विशेषज्ञों तथा दूसरे व्यक्तियों का अनुमान है कि ५० करोड़ रुपये या इससे भी अधिक टैक्स की चोरी प्रतिवर्ष होती है। अकेले आय कर में ही ३० करोड़ रुपये की चोरी प्रतिवर्ष हो जाती है। यह ठीक है कि वित्त मन्त्री ने अपने बजट भाषण में सरकार के उस निर्णय की घोषणा की थी जिसके अनुसार एक शक्तिशाली कमेटी की स्थापना होगी जो सरकारी खर्चों में कमी करने के प्रश्न की जाँच करेगी। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वित्त मन्त्री इस सम्बन्ध में गम्भीर नहीं हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि योजना के मसविदे में इस प्रकार की बचत की रकम का उल्लेख ही नहीं है। वित्त मन्त्री ने बजट की माँग के समय भी इस प्रकार की रकम का कोई हवाला देने से इन्कार कर दिया। योजना मण्डल की बैठक में सनसनीखेज व्याख्यान देते समय भी इन मदों का वित्त मन्त्री ने कोई उल्लेख नहीं किया, यद्यपि उन्होंने यह बताया था कि योजना के मसविदे में वर्णित आय-व्यय का जो अनुमान लगाया गया है उसमें ८०० करोड़ रुपये अधिक बढ़ जाने की आशा है। आय तथा व्यय को समान करने के लिए

वे केवल अतिरिक्त कर लगाने और घाटे का बजट बनाने का ही गीत गाते रहे, इसके सिवाय उनके पास और कोई सुझाव नहीं था ।

केन्द्र तथा राज्य की सरकारें अतिरिक्त कर के द्वारा ४५० करोड़ रु० वसूल कर लेंगी, यह कुछ असम्भव-सा प्रतीत होता है । स्मरणपत्र के मसविदे में बताया गया है कि जहाँ तक राज्यों का सम्बन्ध है अतिरिक्त कर से केवल १६० करोड़ रु० की ही प्राप्ति हो सकेगी, किन्तु नियोजक उनसे अतिरिक्त कर के रूप में २२५ करोड़ रु० की आशा करते हैं । यह अत्यन्त संदिग्ध है कि क्या राज्य सरकारें ऐसा कर भी सकेंगी ! यह तभी सम्भव है जब राज्य सरकारें जीवनोपयोगी चीजों जैसे अन्न इत्यादि पर अतिरिक्त कर लगा दें, जिसका उल्लेख योजना के मसविदे और कर जाँच आयोग ने किया है और केन्द्रीय वित्त मन्त्री ने उसका जोरदार शब्दों में समर्थन किया है । मैं निरन्तर अनुभव करता रहा हूँ कि ऐसा करना किसी प्रकार भी उचित नहीं होगा क्योंकि इन चीजों को हमारे संविधान में जान-बूझ कर करों से मुक्त रखा गया है । उत्तर प्रदेश के हाल के अनुभव से मेरा विचार और भी दृढ़ हो गया है । कोई भी सरकार जीवन की नितान्त आवश्यक वस्तुओं पर कर लगा कर जनता की सहानुभूति जितनी जल्दी खो देती है वैसा अन्य किसी कारण से नहीं हो सकता । प्रजातन्त्र में अच्छी से अच्छी योजना भी प्रजा के समर्थन तथा सहयोग के बिना सफल नहीं बनाई जा सकती । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हम स्वतन्त्रता के ६ वर्ष बाद भी उन लोगों को काम देने में समर्थ नहीं हैं जो शारीरिक श्रम करना चाहते हैं । परिणाम यह हो रहा है कि आज घर के मुखिया को अपने बेकार आश्रितों का केवल पालन-पोषण ही नहीं करना पड़ता, अपितु उसे कर भी देना पड़ता है । हमारे यहाँ नमक जैसी तुच्छ जीवनोपयोगी वस्तु पर कर लगाना तो अनुचित समझा गया है किन्तु हम सम्पूर्ण खाद्य पदार्थों पर कर लगाने की व्यवस्था कर रहे हैं । कर की वकालत करने वालों की दलील है कि भारत में और देशों की अपेक्षा अत्यन्त न्यून कर हैं, अर्थात् केवल ७ प्रतिशत ही हैं । किन्तु वे लोग भूल जाते हैं कि यहाँ पर बेकारों के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मकानों की वे सुविधाएँ भी तो नहीं हैं जो दूसरे देशों के बेकारों को प्राप्य हैं । यहाँ पर कर जाँच आयोग की रिपोर्ट के उस अंश को उद्धृत करना अनुचित न होगा जिसमें नमक पर फिर से कर लगाने को अवांछनीय बताया गया है :—

“कोई कर चाहे कितना भी अच्छा हो किन्तु यदि उसके लगाने से सार्वजनिक असन्तोष फैल जाय और विरोध की भावना जग जाय तो उसको हमें उतना ही बुरा समझना चाहिए, जितना हम अपनी जाँच में अन्य करों के सम्बन्ध में बुराई सुनते चले आये हैं। नमक कर के सम्बन्ध में यह उक्ति पूरी तरह लागू होती है, अतः हमारी समझ से नमक पर कर लगाना बड़ी भारी भूल होगी।”

इन सब बातों पर विचार करने के बाद मैं यही समझता हूँ कि मसविदे में वर्णित ३५० करोड़ रुपये से अधिक अतिरिक्त कर लगाना न तो सम्भव होगा और न उचित ही।

श्रम कर

कर जाँच आयोग ने भारतीय परिस्थितियों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करके और अतिरिक्त कर के सम्बन्ध में सीमित साधनों को समझते हुए निम्न मन्तव्य प्रकाशित किया है :—

“देश के अधिकाधिक विकास की प्रगति से धन का भार बढ़ रहा है। इसे श्रम शक्ति के संगठन के प्रयत्न के द्वारा, जो वास्तव में हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्र में बेकारी के रूप में विद्यमान है, कुछ हद तक कम किया जा सकता है। कृषि मजदूरों को सार्वजनिक कल्याण के निर्माण कार्यों में अथवा सिंचाई तथा संचार एवं परिवहन के कामों में पर्याप्त मात्रा में लगा कर आर्थिक साधनों के बिना बढ़ाये ही देश की आर्थिक दशा में बहुत कुछ सुधार किया जा सकता है।”

एक वर्ष से भी अधिक समय के बीत जाने पर भी योजना आयोग ने और वित्त मन्त्रालय ने इस दशा में कोई ठोस कदम नहीं उठाया है।

यहाँ यह कह देना उचित होगा कि मैंने उपर्युक्त विचार के आधार पर ६० वर्ष के नीचे के सभी समर्थ पुरुषों पर श्रम कर लगाने का पूरा ध्यौरा दिया था। बड़े खेद की बात है कि ६ महीने बीत जाने पर भी नियोजकों ने इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाया। मुझे आशा है कि आय तथा व्यय के अन्तर को कम करने के लिए मेरे सुझाव पर अवश्य ध्यान दिया जायगा, क्योंकि भारत जैसे अविकसित देश में धन की मात्रा कम है और अतिरिक्त श्रम पर्याप्त है।

घाटे का राजस्व

योजना का मसविदा घाटे के राजस्व पर आश्रित है। इसमें १२०० करोड़ रुपये का घाटा कूता गया है जो सार्वजनिक व्यय का २५ प्रतिशत है। घाटे के राजस्वन को इस सीमा तक अपनाने के सम्बन्ध में जबरदस्त मतभेद रहा है, क्योंकि इसके होने से देश में मुद्रा स्फीति हो जाने की आशंका है। इसके बढ़ने पर दुःखदायक एवं घृणित कण्ट्रोलों के लागू होने का भी भय है जिनमें नीचे से ऊपर तक भ्रष्टाचार की भरमार हो जाती है। अर्थशास्त्री मंडल ने इसकी सीमा १००० करोड़ रु० रखी है, और कर जाँच आयोग ने इसकी सीमा और भी कम निर्धारित की है। वर्तमान मुद्रा स्फीति को देखते हुए मेरा यह स्पष्ट मत है कि हमें अर्थशास्त्री मंडल द्वारा निर्धारित सीमा से आगे बढ़ने का खतरा मोल नहीं लेना चाहिए। केन्द्रीय वित्त मंत्री श्री सी० डी० देशमुख ने हमें बार-बार बताया है कि यदि हम योजना के परिमाण को कम करने को तैयार नहीं हैं तो हमें घाटे के बजट का आश्रय लेना ही पड़ेगा फिर चाहे कोई भी खतरा हो। किन्तु मैं इस मत से किसी भी प्रकार सहमत नहीं हूँ। मेरा मत यह है कि अतिरिक्त कर तथा उपर्युक्त सीमा के बाहर वित्तीय घाटे के खतरे को उठाने से तो यही अच्छा होगा कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिए धन के दूसरे साधन ढूँढ़ निकाले जायँ।

श्री सी० डी० देशमुख का कहना है कि सार्वजनिक व्यय बढ़ कर ४०० करोड़ रु० हो जायगा और सरकारी क्षेत्र का व्यय ४८०० करोड़ रु० से ५२०० करोड़ रु० तक पहुँच जायगा। श्री देशमुख ने यह भी कहा है कि योजना के मसविदे में तो ८०० करोड़ रुपये का अनुमान लगाया गया है किन्तु हमें ४०० करोड़ रुपये से अधिक मिलने की आशा नहीं है, अतः बाकी के लिए यही हो सकता है कि गेहूँ, अण्डे, दूध इत्यादि अतिरिक्त वस्तुओं को अतिरिक्त वस्तु निगम द्वारा प्राप्त किया जाय। मैंने सदा यह अनुभव किया है कि यह बात हमारे देश के गौरव और आदर्श के अनुरूप नहीं है कि विदेशी सहायता के बल बूते पर विकास योजना को चलाया जाय, क्योंकि जानकारों ने सदैव कहा है कि विदेशी सहायता बिना बन्धन के नहीं होती। सबसे बुरी बात यह है, जिससे हर हालत में बचना चाहिए कि हम आशायस की वस्तुओं को अमरीका से चाहत हैं जिन्हें बिना विशेष महनत के अपने देश में ही तैयार किया जा सकता है। मुझे इस बात से कोई एतराज नहीं है कि हम विदेशी ऋण और विनियोग से अपने साधनों को बढ़ावें। किन्तु मैं यह नहीं चाहूँगा कि

हमारी योजना विदेशी सहायता पर ही निर्भर रहे। मुझे आशा है कि विदेशी ऋण तथा विनियोग के द्वारा ५०० करोड़ रुपये प्राप्त करना सम्भव होगा। इसके अतिरिक्त विदेशों में भारतीयों ने जो पूँजी लगा रखी है उसे वापस लाने के लिए उन्हें उपयुक्त प्रोत्साहन देना चाहिए।

ऋण तथा अल्प बचत

ऋण तथा अल्प बचत से १२०० करोड़ रुपये प्राप्त होने की आशा व्यक्त की गई है। नियोजकों के इस निराशावादी अनुमान से मेरा विचार बिल्कुल भिन्न है। भारत सरकार तथा राज्य सरकारों ने जनता से जब-जब ऋण की माँग की, तब तब वह माँग से अधिक ही मिला है—इस बात से मेरा विचार और दृढ़ हो गया है। मुझे आशा है कि यदि अनुकूल वातावरण में उचित ढंग से जनता से रुपया माँगा जाय तो योजना काल में प्रतिवर्ष ३०० से ४०० करोड़ रुपया इकट्ठा कर लेना कोई कठिन काम नहीं होगा। वित्त मन्त्रालय की माँगों पर जब बहस हुई थी, तब मैंने अपने भाषण में इस सम्बन्ध में कुछ योजनाएँ प्रस्तुत की थीं। इस विषय से सम्बन्धित एक विस्तृत पत्र प्रस्तुत करने का भी मेरा विचार है।

योजना में १५० करोड़ रुपये की आय की रेलवे से आशा की गई है। मेरे विचार से यह अनुमान कम है। अब रेलवे की क्षमता बढ़ गई है और योजना काल में बड़े पैमाने पर उत्पादन बढ़ने की भी आशा है; अतः रेलवे से कम से कम २०० करोड़ रुपये की आय की आशा करना उचित ही है।

मेरे विचार से ५२०० करोड़ रुपये की आवश्यक धन-राशि इस प्रकार प्राप्त हो सकती है :—

बजट के साधन

अ	रुपये (करोड़ में)
१. वर्तमान दर के अनुसार चालू आय	३५०
२. मितव्ययिता तथा बर्बादी व फिजूलखर्ची रोकने से बचत	२५०
३. टैक्सों की चोरी रोकने से अतिरिक्त आय	२५०
४. अतिरिक्त कर	३५०
५. श्रम कर	४००
६. प्रोविडेंट फण्ड तथा ऋण की दूसरी मदें	२५०
७. जनता से ऋण तथा अल्प बचत	१८००
	३८५०

ब

१. विदेशी ऋण तथा विदेशी विनियोग	५००
२. घाटे का राजस्वन	८५०
	<u>१३५०</u>

अन्त में मैं यह कह देना उचित समझता हूँ कि ये तो मोटे रूप में अनुमान भी नहीं हैं, इन्हें तो केवल एक संकेत मात्र ही समझना चाहिए। यदि नियोजकों को इन संकेतों से योजना पर दुबारा विचार करने की इच्छा पैदा हो सकी तो मैं अपने उद्देश्य को सफल समझूँगा। यह विचार करना आवश्यक है कि क्या राष्ट्रीय योजना को जीवनोपयोगी चीजों नमक, अन्न तथा मिट्टी के तेल पर कर लगाने के सवाल से जोड़ना बुद्धिमत्ता होगी ? क्या यह उचित है कि योजना को सफल बनाने के लिए विदेशी सहायता पर निर्भर रहना चाहिए ? मसविदे में वर्णित सीमा तक के घाटे के राजस्व में कितना खतरा है ? एवं ऊपर बताये हुए तरीकों से साधनों के बढ़ने की वितनी सम्भावना है ?

अध्याय ३

श्रम कर

योजना के मसविदे में अतिरिक्त कर के द्वारा ४५० करोड़ रु० की व्यवस्था की गई है। नियोजक और विशेषकर केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री देशमुख ने इस बात पर बार-बार जोर दिया है कि योजना के वित्त प्रबन्ध के लिए हमें अतिरिक्त कर—अन्न, मिट्टी का तेल इत्यादि जीवनोपयोगी चीजों पर भी लगाने चाहिए।

केन्द्र तथा राज्य सरकारें ४५० करोड़ रु० की वसूली कर सकेंगी, यह अनुमान बहुत अधिक है। योजना के मसविदे में राज्य की सरकारों से अतिरिक्त कर का उल्लेख है। राज्यों ने हिसाब लगा कर केवल १६० करोड़ रु० बताया है, किन्तु नियोजक अतिरिक्त कर के द्वारा उनसे २२५ करोड़ रु० की आशा करते हैं। किन्तु उनके लिए २२५ करोड़ रु० वसूल करना तब तक असम्भव है जब तक वे जीवनोपयोगी वस्तुओं पर भी कर न लगायें, जिनका उल्लेख योजना में किया गया है। मैंने सदा यह अनुभव किया है कि ऐसा करना अनुचित होगा क्योंकि हमारे संविधान में भी ऐसी वस्तुओं को कर से मुक्त रखा गया है। उत्तर प्रदेश के हाल के अनुभवों ने मेरे विचार को और भी दृढ़ कर दिया है। कोई भी सरकार खाने-पीने की चीजों पर कर लगा कर जितनी जल्दी जनता की सहानुभूति तथा समर्थन खो देती है उतनी जल्दी और किसी काम से नहीं। कोई भी अच्छी से अच्छी योजना जनतन्त्रवादी व्यवस्था में तब तक अमल में नहीं लाई जा सकती जब तक उसे जनता का समर्थन और सहयोग प्राप्त न हो। कर के समर्थकों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि हमारे देश में अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम कर हैं अर्थात् केवल ७ प्रतिशत ही हैं। किन्तु उन्हें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि दूसरे देशों में बेकारों को स्वास्थ्य, शिक्षा तथा मकानों की जो सुविधा प्राप्त है वे हमारे देश में नहीं हैं।

कर जाँच आयोग ने देश की दशा पर विचार कर तथा अतिरिक्त कर के सम्बन्ध में यहाँ के निवासियों के सीमित साधनों का अनुभव कर करों के सम्बन्ध में निम्न विचार व्यक्त किये हैं :—

“कोई कर चाहे कितना ही अच्छा हो, किन्तु यदि उसके लगाने से सार्वजनिक असन्तोष फैल जाय और विरोध की भावना जग जाय तो उस टैक्स को अवांछनीय ही समझना चाहिए ।”

कमीशन ने आगे कहा है :—

“देश के अधिकाधिक विकास की प्रगति से धन का भार बढ़ रहा है । यह भार श्रमशक्ति के संगठन के प्रयत्न द्वारा, जो वास्तव में हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्र में बेकारी के रूप में विद्यमान है, कुछ हद तक कम किया जा सकता है । कृषि मजदूरों को सार्वजनिक कल्याण के निर्माण कार्यों में अथवा मिचाई तथा संचार एवं परिवहन के कामों में पर्याप्त मात्रा में लगा कर, आर्थिक साधनों के बिना बढ़ाये ही, देश का बहुत कुछ सुधार किया जा सकता है ।”

कर जाँच आयोग ने सिफारिश की थी कि इस दिशा में छान-बीन की जाय, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि न तो केन्द्रीय वित्त मन्त्री ने और न योजना आयोग ने इस सम्बन्ध में कुछ भी कार्य किया है ।

नी महीने से भी अधिक समय बीत गया, मैंने जब ६० वर्ष से नीचे के सभी समर्थ पुरुषों पर श्रम कर लगाने का पूरा व्यौरा दिया था, किन्तु योजना निर्माताओं पर इनको क्या प्रतिक्रिया हुई, इसका मुझे अभी तक पता नहीं चला है, यद्यपि मुझे अनेक बार विश्वास दिलाया गया कि मेरे सुझावों पर विचार किया जा रहा है । योजना के मसविदे में इसका उल्लेख तक नहीं है । मसविदे के प्रस्तावों में तथा बाद के लेखों में मैंने अपने सुझावों के सम्बन्ध में उठने वाली आपत्तियों का निराकरण कर दिया है और उनको किस प्रकार क्रियान्वित किया जाय, इसे भली-भाँति समझा दिया है । इस कर से ८० से १०० करोड़ रु० की प्रतिवर्ष आय हो जायगी । यह पुरुष गांधी जी के उन महत्वपूर्ण निरीक्षणों पर आधारित है जो उन्होंने श्रम के सम्बन्ध में किये थे । यहाँ मैं उन्हीं के शब्दों को उद्धृत कर देना बहतर समझता हूँ :—

“कोई भी व्यवस्था हो, श्रम ही मुद्रा है धातु नहीं । जो व्यक्ति अपने श्रम का उपयोग कर सकता है वही उस मुद्रा

का स्वामी है, उस सम्पदा का स्वामी है। अपने श्रम को वह वस्त्रों में बदल लेता है, अपने श्रम को अन्न में बदल लेता है। यदि उसे सुवासित तेल की आवश्यकता है—जिसे वह स्वयं पैदा नहीं करता—तो वह अपने अतिरिक्त श्रम का उपयोग करता है। यह श्रम का मुक्त, उचित तथा समान आधार पर विनिमय है, अतः राहजनी नहीं। तुम एतराज कर सकते हो कि यह तो वस्तु से वस्तु की अदला-बदली की आदिम व्यवस्था है। किन्तु क्या सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तु-विनिमय पर ही आधारित नहीं है ?”

बहरहाल मुझे अब भी आशा है कि हम जल्द या देर से उक्त बातों में निहित दूरदेशी की बातों का अनुभव कर सकेंगे।

फ्रेञ्च कम्प्यूनों में चालू कर-पद्धति को देख कर तो मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया है। इस सम्बन्ध में ब्राइन चैपमैन ने अपने ‘इन्ट्रोडक्शन टू फ्रेञ्च लोकल गवर्नमेण्ट’ में जो लिखा है, उसका अंश नीचे दिया जाता है :—

“अन्तिम महत्त्वपूर्ण स्थानीय कर उपर्युक्त किसी एक भी श्रेणी में नहीं आता है। यह विशेष कर है या यों कहना चाहिए की यह करों का समूह है जो सार्वजनिक सड़कों को ठीक-ठाक रखने के लिए लगाया जाता है। इस कर का इतिहास भी बड़ा लम्बा तथा अद्भुत है। इसकी विचित्रता यह है कि यह मुद्रा में अथवा वस्तु के रूप में दिया जा सकता है। कम्प्यून में रहने वाले तथा कर देने वाले १८ से ६० वर्ष तक के प्रत्येक पुरुष को या तो कुछ निर्धारित दिन तक सड़क पर काम करना पड़ता है या फिर उसे बदले में धन, पशु अथवा गाड़ी देनी पड़ती है। किस विभाग के लिए किस धन का कौन-सा श्रम समकक्ष हो इसे सार्वजनिक सभा प्रतिवर्ष निश्चित करती है। युद्ध के कुछ ही दिन पूर्व तक तो कर के रूप में श्रम या धन देना व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर रहता था किन्तु धन के स्थान पर श्रम देने वाले इतने अधिक व्यक्ति हो गये और अध्यक्षाओं के पास काम करने वाले आदिमियों के नाम तो बहुत आ गये किन्तु सामान बहुत कम आया, इसी प्रकार गधे तो बहुत आ गये पर सड़क कूटने के अंजन कम रहे और गाड़ियों का तो ताँता लग गया किन्तु उनमें लादने के लिए सामान कुछ भी नहीं आया, तब १९३८ में पार्लियामेण्ट ने नगरपालिका

परिषद् (म्यूनिसिपल काउंसिल) को अधिकार दिया कि वह कर के रूप में कुछ धन की भी वसूली किया करे। यदि नगरपालिका परिषद् एक दिन के श्रम की माँग करती है तो करदाता उसे श्रम अथवा धन के रूप में दे सकता है। यदि वह दो या तीन दिन के श्रम की माँग करती है तो वह एक दिन तो अपनी इच्छा के अनुसार धन या श्रम दे सकता है किन्तु शेष दिन के लिए नगरपालिका परिषद् (म्यूनिसिपल काउंसिल) उससे धन की माँग भी कर सकती है। यदि चौथे दिन के कर की (अधिक से अधिक) माँग की जाती है तो चौथे दिन भी वह इच्छानुसार श्रम अथवा धन दे सकता है। मनुष्यों, पशुओं तथा गाड़ियों के दिनों की संख्या एक समान होनी चाहिए। कर की यह पद्धति 'प्रेस्टेशन' नाम से प्रसिद्ध है और इसके द्वारा जो शारीरिक तथा आर्थिक सहायता प्राप्त होती है वह कम्प्यून के शहरी क्षेत्र के बाहर की सार्वजनिक सड़कों के ठीक-ठाक रखने में लगाई जाती है।

श्रम अथवा धन के रूप में आवश्यकता से अधिक जो कर प्राप्त हो जाता है उसे उन ग्रामीण सड़कों पर, जो गाँवों को कम्प्यून से जोड़ती हैं, और कम्प्यून के अन्दर की (शहरी क्षेत्र की) सड़कों पर लगाया जाता है। नगरपालिका परिषद् (म्यूनिसिपल काउंसिल) काम को ठीक-ठाक रखने के लिए अपने साधारण बजट में एक दिन का अतिरिक्त कर लगा सकती है। कम्प्यूनों के सभी विभागों के भार को समान करने के लिए कुछ प्रयत्न किये गये हैं। शहरी केन्द्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र के अन्तरतम भाग की सड़कों को ठीक-ठाक रखने का उत्तरदायित्व अधिक समझा गया है। १९२० से काउंसिल जनरल को यह अधिकार मिल गया है कि वह सारे विभाग में एक दिन का कर लगा सकती है जो केवल धन के रूप में ही वसूल किया जा सकता है। काउंसिल जनरल इस प्राप्त धन-राशि को अपने तखमीने के मुताबिक तथा कम्प्यून की आवश्यकता, सड़कों की लम्बाई, विस्तार और आबादी के घनत्व इत्यादि के अनुसार कम्प्यूनों में बाँट सकती है। प्रत्येक करदाता सार्वजनिक सड़कों के एक भाग के लिए चार दिन तक किसी प्रकार का भी कर दे सकता है। इसी प्रकार वह एक दिन दूसरे भाग के लिए और एक दिन विभागीय कार्यों के लिए दे सकता है।

पार्लियामेण्ट इस बात का ख्याल रखती है कि फ्रान्स कृषि-प्रधान देश है। स्थानीय अधिकारियों को यह अधिकार है कि वे काम का विशेष वितरण कर सकते हैं और वित्तीय वर्ष का आरम्भ पहली जनवरी से न मान कर पहली नवम्बर से मान सकते हैं। यह निय

इसलिए बनाया गया है जिससे देहाती करदाता फसल कटने के बाद अपने बेकार समय का लाभ उठा लें ।

श्रम कर के सम्बन्ध में मैं जो तर्क पहले दे चुका हूँ उसको फिर दुहराना उचित नहीं समझता हूँ । किन्तु मैं नियोजकों से और विशेषकर प्रधान मन्त्री से यह नम्र निवेदन अवश्य करता हूँ कि वे मेरे प्रस्ताव को गम्भीरता से विचारने की कृपा अवश्य करें । यदि हम विकास के कामों में श्रम कर का सफलतापूर्वक उपयोग कर सके तो हम केवल अपनी समस्याओं के हल करने में ही सफल नहीं होंगे, बल्कि अविकसित देशों को राष्ट्रीय विकास का एक नया मार्ग दिखा देंगे । इसके साथ-साथ हम अविकसित देशों को श्रम के मूलभूत महत्त्व को समझा कर उन्हें मितव्ययिता का पाठ भी पढ़ा सकेंगे । हमारे प्रधान मन्त्री अविकसित देशों की सहायता करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं और इस प्रकार का मार्ग-प्रदर्शन उनके लिए भारत की एक बड़ी सहायता सिद्ध हो सकेगा ।

अध्याय ४

सार्वजनिक ऋण एवं अल्प बचत योजना

द्वितीय पंचवर्षीय योजना को कार्यान्वित करने में सार्वजनिक ऋण तथा राष्ट्रीय बचत योजनाओं का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योजना के मसविदे में बताया गया है कि सार्वजनिक क्षेत्रों में जितना व्यय होगा उसका २५ प्रतिशत, अर्थात् १२०० करोड़ रुपया इन्हीं साधनों के द्वारा प्राप्त किया जायगा। योजना के मसविदे में आगे कहा गया है कि इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए एक ऐसा देशव्यापी साधन ढूँढा जाय, जिसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र तथा शहरी क्षेत्र के सभी लोगों से प्रभावशाली अपील की जा सके। इस काम में गैर-सरकारी लोगों की सेवाओं का भी यथासम्भव लाभ उठाया जा सकता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने अमृतसर अधिवेशन में एक विशेष प्रस्ताव पास किया था और उसके द्वारा देश के सभी लोगों से अल्प बचत योजना में पूर्ण सहयोग देने की तथा योजना को पूर्णतः सफल बनाने की अपील की थी। कांग्रेस कार्यकारिणी ने भी एक समिति की नियुक्ति की है जो अल्प बचत आन्दोलन को देशव्यापी बना कर उसे सफल बनाने के सुझाव देगी।

देशव्यापी आन्दोलन द्वारा प्राप्त होने वाली बचतों के एकत्रित करने के लिए उचित साधन तथा प्रचार तो आवश्यक है ही, किन्तु मेरे विचार से इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार कर लेना भी आवश्यक है कि जनता से किस प्रभावशाली ढंग से अपील की जाय कि वह सार्वजनिक ऋण तथा राष्ट्रीय बचत में अधिक से अधिक रुपया लगाने को तैयार हो जाय। युद्ध इत्यादि राष्ट्रीय संकट के अतिरिक्त देशभक्ति, राष्ट्रीय आर्थिक विकास तथा समाज-कल्याण के नाम पर की गई अपीलों का प्रभाव बहुत कम होता है और सूद के लालच से सरकारी प्रतिभूतियों (Securities) में रुपया लगाने के लिए की गई अपीलों का प्रभाव तो और भी कम होता है। यदि हम पिछले अनुभव से शिक्षा लें तो देखेंगे

कि सार्वजनिक ऋणों में प्रायः उन्हीं संस्थाओं अथवा व्यक्तियों ने रूपया लगाया है जिनको सरकारी प्रतिभूतियों में विवश हो कर रूपया लगाना पड़ा है। इनमें धर्मार्थ संस्थाएँ, विधवाएँ, नाबालिग, वृद्ध इत्यादि हैं तथा वे लोग ही अधिक हैं जिन्हें एक निश्चित आय की आवश्यकता थी और वे स्वयं नहीं बचा सकते थे। योजना को सफल बनाने का उत्तरदायित्व मिनिस्ट्रों, विधान सभा के सदस्यों, सरकारी उच्चाधिकारियों पर अधिक है, अतः इन लोगों को सरकारी ऋणों में अधिक धन लगाना चाहिए था। किन्तु जहाँ तक मेरी जानकारी है इन लोगों ने उतना धन नहीं लगाया है, जितना इन्हें लगाना चाहिए था। यह बात नहीं है कि इनके पास लगाने को रूपया नहीं था, इनके पास रूपया था किन्तु इन्होंने पोस्टल सेविंग्स सर्टिफिकेट्स और सरकारी बौण्डों में लगाने की अपेक्षा अपनी बचत को मकानों में, शेयरों में, बैंकों में जमा करने में, यहाँ तक कि निजी व्यापार तक में लगाया है। इतना ही नहीं, इन्होंने रूपया जमा करके रखा है या उसे दूसरे कामों में खर्च कर दिया है। किन्तु ये लोग अधिक दोषी नहीं हैं। कारण यह है कि एक तो अभी तक जनता में नागरिकता की भावना का विकास पूर्णतः नहीं हुआ है। दूसरे, इन लोगों को स्वास्थ्य, मकान, शिक्षा, नौकरी तथा वृद्धावस्था में मिलने वाली पेन्शन इत्यादि की वे सरकारी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं जो उन्नत देशों के कर्मचारियों को प्राप्य हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि ये लोग धन से अधिक से अधिक लाभ उठाने की चिन्ता स्वयं करें। निस्सन्देह देश की जनता इन उद्देश्यों को पूर्ण करने वाली बचत की योजनाओं में धन-राशि का विनियोग प्रसन्नतापूर्वक करेगी।

सम्भवतः दो-एक योजनाएँ तो ऐसी हैं जो सभी लोगों को प्रभावित नहीं करतीं। अतः हमें योजनाएँ बनाते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि हमारी योजनाएँ भिन्न-भिन्न वर्ग के व्यक्तियों की आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल हों जिससे वे उनमें अधिक से अधिक धन का विनियोग कर सकें। योजना बनाने से पूर्व हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किस वर्ग के लोग किन परिस्थितियों में सार्वजनिक ऋण तथा बचत योजनाओं में धन लगा सकते हैं। मोटे तौर पर नीचे लिखे वर्ग के लोग ऐसे हैं जिन्हें इस ओर आकृष्ट किया जा सकता है :—

(१) राजा (२) वेतनभोगी कर्मचारी (३) किसान (४) ठेकेदार (५) भ्रष्टाचार से धनाढ्य। मेरा सदा से यह विचार रहा है कि

राजाओं से बहुत अधिक धन प्राप्त किया जा सकता है, यदि उन्हें ब्रिटिश शासन काल जैसे ही कुछ विशेष प्रलोभन दे दिये जायँ। धन के अतिरिक्त उनके पास और भी साधन हैं और उनमें से कुछ योग्य और देशभक्त भी हैं। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि इन राजाओं की सलाह से योजना के अन्तर्गत कुछ विकास योजनाओं का बनाना सम्भव हो जायगा और योजना के सफल बनाने में उनके सहयोग, समर्थन, बुद्धि तथा शासन-योग्यता का लाभ उठाया जा सकेगा। इस प्रकार केवल उनके जेब-खर्च से बचे हुए धन से ही नहीं, अपितु उनकी दूसरी बचतों से भी योजना को कार्यान्वित करने के लिए लाभ उठाया जा सकता है। यह तो साधारण योग्यता का मनुष्य भी समझ सकता है कि वे सन्तान के भविष्य के लिए कितने चिन्तित हैं। इसी प्रकार यदि विदेशी पूँजीपतियों को कुछ आश्वासन दे दिये जायँ और २० या २५ वर्ष के लिए उनको तथा उनकी सन्तान को एक निश्चित लाभ का विश्वास दिला दिया जाय तो मुझे आशा है कि योजना के अन्तर्गत सार्वजनिक उद्योग एवं विकास योजनाओं में उनका सहयोग सरलता से मिल जायगा। यदि ऐसी कोई योजनाएँ नहीं बनाई जायेंगी तो उन्हें अपना धन या तो बड़े-बड़े व्यापारों में लगाने के लिए या फिर उसे गाढ़ कर रखने के लिए विवश होना पड़ेगा।

मुझे आशा है कि गृह-निर्माण योजना को प्रोत्साहन दे दिया जाय तो वेतनभोगी तथा मध्यवर्गी लोगों से बहुत अधिक धन प्राप्त किया जा सकेगा। हमारे केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री देशमुख तो गृह-निर्माण योजना पर धन लगाने के बिलकुल पक्ष में नहीं हैं, किन्तु अनुभव बताता है कि इस योजना के चालू न रहने पर भी सरकारी ऋण तथा उद्योगों में बहुत कम रुपया लगाया गया था। मुझे आशा है कि यदि हम इस नीति को छोड़ कर गृह-निर्माण योजना में रुपया लगाने के लिए लोगों को प्रोत्साहन दें तो हम मध्यवर्गी लोगों की बचत को ही नहीं एकत्रित कर लेंगे, अपितु तिजोरियों में बन्द हुए जवाहरात तथा सोने का भी सदुपयोग कर सकेंगे। ऐसा करने से रोजगार बढ़ेंगे और भवन-निर्माण से सम्बद्ध उद्योगों की उन्नति होगी।

दूसरी योजनाएँ और हैं जिनके द्वारा वेतनभोगी तथा मध्यवर्गी लोगों को अल्प बचत योजना में रुपया लगाने के लिए आकृष्ट किया जा सकता है। वह यह है कि ऐसे साधन ढूँढ़े जायँ जिनसे इन लोगों के दैनिक व्यय में कमी हो जाय और स्थायी काम के साथ-साथ कोई दूसरा सहायक काम और मिल जाय, जिससे इन्हें कुछ अतिरिक्त आय हो जाय।

बाबुओं की तरह किसानों को भी अल्प बचत योजना में धन लगाने के लिए आकृष्ट किया जा सकता है । शर्त यह होनी चाहिए कि इससे जो भी धन प्राप्त हो, उसका अधिकांश स्थानीय विकास योजनाओं में इस रूप से लगाया जाय कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसानों को उसका लाभ मिलता रहे । यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि 'रूरल क्रेडिट सर्वे रिपोर्ट' में बताया गया है कि स्थानीय लाभ और प्रोत्साहन को दिखा कर किसानों की अतिरिक्त बचतें बड़ी सरलता के साथ प्राप्त की जा सकती हैं । शर्त यह है कि ग्रामीण क्षेत्र की बचतों से प्राप्त धन को ट्यब बैल, ग्राम-पुनर्निर्माण, ग्राम-उद्योग तथा ग्राम-विकास जैसे कामों में ही लगाया जाय । यहाँ प्रसंगवश यह कह देना भी उचित प्रतीत होगा कि ग्रामीणों के लिए कागजी बौण्डों की अपेक्षा धातु के बौण्ड अधिक आकर्षक होंगे ।

ठेकेदार

योजना के क्रियान्वित होने पर इस वर्ग के लोग औरों की अपेक्षा निकट भविष्य में ही अधिक लाभ उठायेंगे, अतः यह उचित प्रतीत होता है, कि योजना के लिए जो धन संग्रह किया जा रहा है उसमें ये लोग अपना पूरा धन लगायें । इस उद्देश्य की पूर्ति एक सीमा तक हो सकती है, यदि यह नियम बना दिया जाय कि ये लोग जमानत तथा सुरक्षा के रूप में ५ से १० प्रतिशत तक जो धन जमा करें उसके सरकारी बौण्ड दे दिये जायें जो द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में चालू रहेंगे ।

सार्वजनिक हित को दृष्टि में रख कर चोरबाजारी की उस कमाई के निकलवाने का भी प्रयत्न करना चाहिए जो तहखानों में चली गई है अथवा जो समाज-विरोधी कामों में लगाई जा रही है । आय कर जाँच आयोग ने ऐसी आय का लगभग ५०० करोड़ रु० का अनुमान लगाया था जो छिपा कर रखी गई है । किन्तु खेद की बात है कि ६ वर्ष तक प्रयत्न करने पर भी आयोग इस छिपी आय के २० प्रतिशत का भी पता लगाने में असमर्थ रहा है । उसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसे सफलता नहीं मिलेगी । इन परिस्थितियों में मैं अपने सुभाव को फिर दुहराता हूँ कि राष्ट्रीय विकास के लिए वाहक (बेअरर) बौण्ड जारी किये जायें जिनकी किस्त २५ से ३० प्रतिशत होनी चाहिए । शर्त यह होनी चाहिए कि इन वाहक (बेअरर) बौण्डों में जो रुपया, लगाया जाय उसके सम्बन्ध में आय कर की वसूली के लिए कोई छान-बीन न की जाय । मैं समझता हूँ कि जोखिम के भय के कारण आरम्भ में लोग इसमें अधिक रुपया नहीं

लगायेंगे किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि योजना काल तक इसमें ५० से १०० करोड़ रु० तक जमा हो जायेंगे । जो भी हो, यह प्रयोग भी करने योग्य है ।

अन्त में ऊपर कहे हुए सुझावों के आधार पर यहाँ पर बचत की कुछ योजनाएँ प्रस्तुत करना उचित प्रतीत होता है ।

गृह-निर्माण बचत

योजना आयोग के सामने मैंने मकानों के सम्बन्ध में अपने विचार रखे थे । मैंने सुझाव दिया था कि स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण में ४०-५० लाख मकानों के प्लॉट निकाले जायें और इन मकानों के लिए सड़क, नाली तथा प्रकाश का उचित प्रबन्ध भी किया जाय । कदाचित् धन की कमी के कारण योजना के मसविदे में इस विषय को छूआ तक नहीं गया है । मेरा विचार है कि मकानों के बौण्डों के जारी करने पर आवश्यकता से अधिक धन जमा हो जायगा । इन सुधारे हुए प्लॉटों को लागत मात्र पर दिया जाय और बौण्डधारियों का ध्यान पहले रखा जाय । भवन-निर्माण सम्बन्धी दुष्प्राप्य सामग्री के दिलाने में भी उन्हें ही प्राथमिकता देनी चाहिए । मुझे आशा है कि इस योजना से १०० करोड़ रु० प्राप्त हो जाना कोई कठिन काम नहीं है ।

उद्यान-बचत योजना

एक और योजना है जो वेतनभोगी तथा मध्यवर्गी लोगों को पसन्द आ सकती है और वह है औसतन ५ एकड़ भूमि के लाख दो लाख बागों का लगाना । मैंने अपने एक सुझाव में इस योजना को व्यौरेवार दिया है । यहाँ मैं इतना ही कहूँगा कि योजना के चालू होने पर योजना काल में ५ लाख व्यक्तियों को स्थायी रूप में और बहुत से लोगों को अस्थायी रूप में काम दिया जा सकता है । इससे प्रति एकड़ कम से कम ५०० रु० वार्षिक आय की आशा है । यदि एक लाख बाग भी तैयार कर लिये गये तो प्रतिवर्ष २५ करोड़ रु० की बचत हो सकती है । मेरा प्रस्ताव है कि उद्यान-रक्षक बौण्ड जारी किये जायें और तैयार उद्यानों के बेचते समय इन बौण्डधारियों को प्राथमिकता दी जाय ।

दूध और गौ-रक्षा योजना

दूध के उत्पादन के सम्बन्ध में मैं योजना आयोग के सामने अपना मत रख चुका हूँ । मैंने दूध की खपत बढ़ाने के सम्बन्ध में अनेक

सुभाव रखे हैं। उनमें से एक यह है कि शहरी क्षेत्र में दुग्ध सहकारी समितियाँ खोली जायँ और ग्रामीण क्षेत्र में इन समितियों को अच्छी नस्ल की गौओं के खरीदने की सुविधा दी जाय। इन सुभावों को क्रियान्वित करने के लिए मेरा सुभाव है कि दूध अथवा गौ रक्षा के बौण्ड जारी किये जायँ और इन बौण्डधारियों को दूध की पूर्ति करने की तथा पशुओं के खरीदने की सुविधा दी जाय। यदि इस योजना के अनुसार ठीक तरह काम किया जाय तो इससे भी ५० करोड़ रु० की आया हो सकती है।

अन्न में बचत

अन्न के भावों को निरन्तर बढ़ता हुआ देख कर बँधी हुई आमदनी के लोग यह अवश्य चाहेंगे कि कोई ऐसी योजना बन जाय जिसके द्वारा उन्हें निश्चित मूल्य पर अन्न मिलता रहे। अतः मेरा सुभाव है कि “राशन में बचत” के बौण्ड जारी किये जायँ और इन बौण्डधारियों को यह अधिकार रहे कि वे निश्चित मूल्य पर निश्चित परिमाण में साल भर तक अन्न खरीद सकें। इसके व्यौरों का हिसाब लगा कर देख लिया जाय। इन बौण्डों से जो धन प्राप्त हो, उससे गाँवों में ‘कृषक सहकारी समितियों’ की तथा शहरों में ‘उपभोक्ता सहकारी समितियों’ की सहायता की जाय। मेरा पक्का विश्वास है कि इस योजना का स्वागत होगा और इससे १० करोड़ रु० प्राप्त कर लेना कोई कठिन काम न होगा। इसके अतिरिक्त एक बात और होगी कि जनता की बचतों के प्राप्त करने के साथ-साथ सरकार को प्रतिवर्ष अन्न की दरें निश्चित करने का एक अच्छा साधन प्राप्त हो जायगा।

केन्द्रीय वित्त-मन्त्री के निराशावादी रहने पर भी इसी प्रकार की अनेक लोकप्रिय योजनाएँ सोची जा सकती हैं। मेरा पूरा विश्वास है और मैं पहले बता भी चुका हूँ कि यदि अनुकूल वातावरण में अनुकूल रीति से जनता से माँग की जाय तो सार्वजनिक ऋणों के द्वारा या राष्ट्रीय बचत के द्वारा १५०० करोड़ रु० इकट्ठा कर लेना कोई कठिन काम नहीं होगा।

अध्याय ५

मितव्ययिता और कार्यक्षमता के प्रयत्न

गत वर्ष योजना के मसविदे के प्रकाशित होते ही मैंने योजना के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए योजना आयोग के सामने अनेक सुझाव रखे थे। मैंने एक सुझाव में मितव्ययिता की अनिवार्य आवश्यकता पर जोर दिया था तथा अपव्यय एवं अति व्यय रोकने का अनुरोध किया था।

अनेक प्रश्नों पर व्यौरेवार विचार करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि कर जाँच आयोग तथा दूसरी समितियों द्वारा बताये गये सुझावों के द्वारा प्रशासन के खर्चों में कमी करने का प्रयत्न किया जाय तो केन्द्र तथा राज्यों के वार्षिक खर्चों में, जो लगभग ८०० करोड़ रु० है, ५ से १० प्रतिशत तक की कमी की जा सकती है और इस प्रकार वर्ष में ५० या ६० करोड़ रु० तथा पाँच वर्ष में २५० या ३०० करोड़ रु० सरलता से बचाये जा सकते हैं। इस सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव दिया था उसका सार यहाँ दिये देता हूँ :—

“द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में जनता से आशा की जाती है कि वह द्वितीय योजना को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए संयम रख कर त्याग-तपस्या का जीवन बितावे। यदि सरकारें भी अपने फिजूल खर्चों को रोक प्रकरशासन खर्चों में कमी करने का प्रयत्न करें तो वह जनता के सामने अच्छा आदर्श उपस्थित कर सकेंगी। बिना ऐसा किये जनता को न तो किसी प्रकार का प्रोत्साहन ही दिया जा सकेगा और न अतिरिक्त बचत को योजना में लगाने का अनुरोध ही किया जा सकेगा।”

बड़े हर्ष की बात है कि योजना आयोग ने मेरे इस सुझाव पर ध्यान देकर प्रशासन कार्य में बचत तथा कुशलता लाने पर जोर दिया है। रिपोर्ट में इस महत्त्वपूर्ण समस्या के सम्बन्ध में केवल एक ही पैरा लिखा है किन्तु वह भी स्वागत के योग्य है। वह इस प्रकार है :—

“अत्यन्त विशाल पंचवर्षीय योजना का भार देश पर बहुत अधिक पड़ेगा और प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को इसकी सफलता के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। यह ठीक ही है कि जनता और भी अधिक भार सहने को तैयार है किन्तु उसे यह तो विश्वास हो जाय कि सरकार अपनी सभी फिजूलखर्चियों को रोक कर प्रशासन में कुशलता लाने का प्रयत्न करेगी। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक अधिकृत विभाग को द्वितीय योजना में पहली योजना से अधिक व्यय करना होगा, अतः हमें व्यय करते समय पूरी सावधानी रखनी चाहिए। केन्द्र तथा कुछ राज्यों में खर्च में कमी के सुझाव देने के लिए कुछ विशेष समितियाँ काम कर रही हैं। राष्ट्रीय विकास परिषद् (नेशनल डेवलपमेण्ट काउन्सिल) ने केन्द्रीय वित्त मन्त्री की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की है जो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न योजनाओं के व्यय में कमी का सुझाव देगी।”

मैं इस समिति की नियुक्ति का तो स्वागत करता हूँ, किन्तु मुझे यह विश्वास नहीं होता कि यह समिति कर जाँच आयोग की सिफारिश के अनुसार उच्च शक्तिशाली समिति के रूप में काम कर सकेगी। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस समिति को उन विकास योजनाओं से कोई सरोकार नहीं जिनका सम्बन्ध द्वितीय पंचवर्षीय योजना से है। दूसरा कारण यह है कि इसके जितने भी सदस्य हैं उनके पास पहले से ही अधिक काम है, अतः वे इस काम को उतनी तेजी से नहीं कर पायेंगे जितनी तेजी से यह होना चाहिए। वास्तव में प्रत्येक समस्या का हल उपयुक्त समय में ही होना चाहिए। एक सप्ताह के विलम्ब से भी राष्ट्रीय कोष में अपार क्षति हो सकती है।

केन्द्र तथा कुछ राज्यों में जो विशेष समितियाँ काम रही हैं समय-समय पर उनकी चर्चा होती रहती है, किन्तु उन समितियों का थोड़ा बहुत विवरण दे देना आवश्यक था। उनके प्रयत्न तथा सफलताओं पर तो कुछ प्रकाश अवश्य ही डालना चाहिए था, किन्तु आश्चर्य तो यह है कि उन राज्यों के नाम तक नहीं दिये गये हैं जिनमें ये समितियाँ काम कर रही हैं।

एक सप्ताह बीता होगा कि एक समाचार-पत्र की रिपोर्ट में पढ़ा था कि वित्त मन्त्रालय तथा गृह विभाग ने मिल कर अनेक मन्त्रालयों के दफ्तरों के संगठन के लिए तथा उनकी आवश्यकताओं की जाँच के लिए विशेष पुनर्गठन समिति की स्थापना की है। इस समिति ने पता लगाया है कि नौ मन्त्रालयों में ४००० आदमी

आवश्यकता से अधिक भरे हुए हैं । इस समिति का अनुमान है कि यदि इन बेकार के कर्मचारियों को अलग कर दिया जाय तो प्रतिवर्ष १४ करोड़ रु० की बचत हो जायगी ।

कर जाँच आयोग तथा दूसरी समितियों ने भी संकेत किया है कि दूसरे मन्त्रालयों तथा राज्य सरकारों में भी इसी प्रकार बेकार के आदमी भरे हुए होंगे । व्यर्थ के कर्मचारियों के अतिरिक्त सफर भत्ता, अधिकारियों की मोटरें, टेलीफोन, मनोरंजन, स्टेशनरी तथा आकस्मिक खर्च आदि में कम अपव्यय नहीं होता है । आडिटर जनरल ने अपनी गत रिपोर्ट में उस बड़ी रकम की ओर विशेष ध्यान दिलाया है जो मनोरंजन पर अधिकृत तथा अनधिकृत रूप में पानी की तरह बहाई गई है । इनकी जाँच भी पूरी तरह होनी चाहिए ।

कर जाँच आयोग की सिफारिशों के अनुसार जब तक उच्च शक्तिशाली कमेटी कोई कड़ा कदम तुरन्त नहीं उठायेगी, तब तक इन जाँचों से कोई लाभ नहीं होगा ।

जितने भी फिजूल खर्च हैं उन सबको तो बिना किसी विलम्ब के, बिना किसी टाल-मटोल के, रोक दिया जाय किन्तु अतिरिक्त कर्मचारियों को तुरन्त पृथक् न किया जाय । उन्हें ६ महाने तक की अनिवार्य छुट्टी दे दी जाय और योजना के सम्बन्ध में नये आदमियों की भर्ती करने से पहले इन्हें खपाने का पूरा प्रयत्न किया जाय । उन्हें नये स्थानों के लिए ट्रेनिंग पाने की सुविधा दी जाय । किन्तु मन्त्रालयों तथा दफ्तरों में फिजूल कर्मचारी किसी हालत में भी न रखे जायँ, क्योंकि आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों के रहने पर ही प्रशासन में शिथिलता आती है, फिजूलखर्ची बढ़ती है और यहाँ तक कि भ्रष्टाचार भी फैलता है । यदि ऊपर बताये हुए निर्देश के अनुसार आवश्यकता से अधिक आदमियों की छुटनी कर दी जाय तो योजना की अवधि के भीतर ७ करोड़ रु० की बचत हो जायगी । यदि इस धन-राशि को उचित रीति से कृषि अथवा उद्योग और विशेषकर छोटे-छोटे उद्योगों में लगाया जाय तो ४००० व्यक्तियों को ही नहीं, १४००० व्यक्तियों को काम दिया जा सकता है, यदि प्रति व्यक्ति के पीछे ५००० रु० भी व्यय कर दिये जायँ । यदि प्रति व्यक्ति पर १०००० रु० का भी हिसाब लगाया जाय तो भी ७००० व्यक्तियों को स्थायी रूप से काम मिल सकता है । अतः मेरा सुझाव है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् या मन्त्रिमण्डल एक उच्च शक्तिशाली कमेटी की नियुक्ति करे जो पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत विकास योजनाओं के अतिरिक्त दूसरे खर्चों पर विचार करे ।

मेरे विचार से नियोजकों को विकास योजनाओं के सम्बन्ध में चीन जैसे उदार सिद्धान्तों को अपनाना चाहिए जिससे वे योजनाधिकारियों के सामने एक आदर्श उपस्थित कर सकें। इस सम्बन्ध में राज्य योजना आयोग के अध्यक्ष श्री ली फू-चुन ने अपने 'फर्स्ट पीपुल्स कांग्रेस' के द्वितीय अधिवेशन में ५ तथा ६ जुलाई को जो भाषण दिया था उसके कुछ अंश दे देना यहाँ उचित प्रतीत होता है :—

१—“अनुत्पादक कार्यालय भवनों में तथाकथित राष्ट्रीय शैली को बिना सोचे-विचारे अपनाने के कारण जो फिजूलखर्ची हुई है उसे देख कर आश्चर्य होता है। 'परिस्थिति के अनुकूल औचित्य, मितव्ययिता तथा आकर्षण' के सिद्धान्त की चिन्ता न कर शानदार इमारतों की सजावट में काफी तादाद में बहुमूल्य और विशेष सामान लगाने पर बहुत बल दिया गया है।”

२—“आलीशान इमारतों के लिए मेज, कुर्सी तथा सोफे तथा सजावट का दूसरा सामान भी शानदार लगाना पड़ता है। अतः इनके लिए कीमती कालीन तथा सोफे इत्यादि खरीदने पड़ते हैं।

ये आलीशान बड़ी-बड़ी इमारतें व्यर्थ हैं क्योंकि ये सब अनुत्पादक हैं और हमारे समाजवादी औद्योगीकरण के सिद्धान्त के बिल्कुल विरुद्ध हैं। अतः यह उचित प्रतीत होता है कि इन अनुत्पादक योजनाओं की इमारतों पर व्यर्थ का व्यय न किया जाय और दूसरी फिजूलखर्चियों को भी रोका जाय। ऐसा करने से बहुत-सा रुपया बच जायगा।

दूसरी बात यह है कि हमें उत्पादक योजनाओं के निर्माण सम्बन्धी व्यय को भी कम करना होगा।”

३—“निर्माण-योजना को जितना ही अधिक महत्व दिया जायगा, धन का उतना ही अधिक दुरुपयोग होगा। इसका कारण यह है कि निर्माण योजनाओं को सारे राष्ट्र का समर्थन प्राप्त होता है और इस पर जो व्यय होता है वह उसे नहीं अखरता। सब का ध्यान योजना के समाप्त करने पर केन्द्रित हो जाता है, अतः धन के दुरुपयोग पर ध्यान नहीं दिया जाता है। एक उच्च कोटि के मोटर कारखाने के बनाने में नवम्बर १९५४ में १०,५७०,००० युआन का सामान व्यर्थ ही जमा हो गया था। इसके अतिरिक्त कुछ सामान नष्ट हुआ, कुछ साज-सज्जा में व्यर्थ गया, कुछ सामान अनुचित रूप से काम में लाने के कारण व्यर्थ हुआ, कुछ कारीगरों की काहिली के कारण बेकार गया, कुछ डिजाइन गलत होने के कारण बर्बाद हुआ और कुछ कुप्रबन्ध के कारण नष्ट हुआ। कुल मिला कर राष्ट्र को ६,३००,००० युआन की चपत लग गई।

धन के दुरुपयोग के दूसरे कारण हैं निर्माण कार्य में मजदूरों का ठीक तरह संगठित न होना, निम्न कोटि की मशीनों का काम में लाना तथा उनका ठीक तरह से फिटिंग इत्यादि न करना, निचली श्रेणी की इमारतों का बनवाना और निर्माण में बहुत अधिक व्यय करना इत्यादि । इन सब कारणों से मजदूरों के उत्पादन में कमी आ गई है और निर्माण की लागत बहुत अधिक बैठ गई है ।

अतः यह स्पष्ट है कि उत्पादक योजनाओं के निर्माण कार्य में कमी करके बहुत-सा धन बचाया जा सकता है ।

तीसरी बात यह है कि हमको भिन्न-भिन्न उत्पादक विभागों के साथ-साथ यातायात, डाकखाना, तार इत्यादि वाणिज्य विभागों की भी उन्नति करनी चाहिए ।”

४—“हमारे यहाँ ऐसे अनेक उद्योग, विभाग तथा उपविभाग हैं जिनमें व्यर्थ के बहुत से आदमी भरे हुए हैं । उदाहरण के लिए ‘पेन्की आयरन एण्ड स्टील वर्क्स’ का नाम लिया जा सकता है । यह उदाहरण ऐसा नहीं है जिसका किसी को पता न हो ।”

५—“अनेक राज्यों में अभी तक फिजूल खर्ची बढ़ी हुई है, अतः इसे तुरन्त रोक देना चाहिए ।

यह निश्चित है कि फिजूलखर्ची के रोकने से, और छटनी करने से और भी अधिक रुपया बच सकता है ।

संक्षेप में यह भी कहा जा सकता है कि राज्य को चाहिए कि वह हिसाब फैला कर देख ले कि कहाँ और कितनी उचित बचत की जा सकती है । अनुचित बचत करना तो न्याय का गला घोटना ही होगा ।

राज्य परिषद् (स्टेट काउंसिल) ने निश्चय किया है कि मूल योजना में उत्पादक उद्योगों की इमारत तथा मशीन लगाने की जो लागत आँकी गई थी उसमें आने वाले तीन वर्षों के भीतर कम से कम दस प्रतिशत की कमी कर देनी चाहिए । इसी प्रकार अनुत्पादक विकास योजनाओं में भी मूल योजना के अनुमान से १५ प्रतिशत कम खर्च होना चाहिए । इन दोनों आँकड़ों को आधार मान कर हमको उत्पादक तथा अनुत्पादक विकास योजनाओं की इमारतों में २ से ३ प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक वार्षिक बचत करने का प्रयत्न करना चाहिए ।”

६—“उन लोगों की कड़ी आलोचना करनी चाहिए जो हमारी सब प्रकार की पाई-पाई की बचत का विरोध करते हैं और फिजूल खर्ची की वकालत करते हैं ।

(१) हमें उन लोगों की भी कड़ी आलोचना करनी चाहिये जो

जल्दबाजी की सिफारिश करते हैं। सब कामों को एक साथ तुरन्त आरम्भ कर देने से निर्माण को प्राथमिकता नहीं दी जा सकेगी।

दूसरी बात यह है कि यदि हम सब विकास योजनाओं को एक साथ आरम्भ कर देंगे तो प्रत्येक योजना के हिस्से में बहुत रुपया आयगा और हमको निर्माण-कार्य में बहुत रुपया लगाना पड़ेगा, किन्तु इस लागत से हमको तुरन्त कोई लाभ नहीं होगा।

(२) हमको उन लोगों के भुलावे में नहीं आना चाहिए जो कहते हैं कि हम आधुनिक उद्योगों को आरम्भ करने जा रहे हैं, अतः सभी अनुत्पादक इमारतें तथा उनकी साज-सज्जा आधुनिक होनी चाहिए। वे लोग अपनी दलीलों में कहते हैं कि आधुनिक उद्योग के आरम्भ करने से पूर्व हमको अपना जीवन-स्तर भी आधुनिक बनाना चाहिए। उद्योगों को आधुनिक रूप दिये बिना तथा कृषि में आधुनिकता लाये बिना उद्योगों के आधुनीकरण में विलम्ब हो जायगा।

हमको इस बात को भी नहीं मानना चाहिए कि हमें अपना बजट उदार बना कर उदारतापूर्वक व्यय करना चाहिए, क्योंकि जिस बजट को जानबूझ कर बढ़ा दिया जाता है उसमें मितव्ययिता करने की कम सम्भावना रहती है। किन्तु उदार बजट बनाने पर उदारतापूर्वक ही खर्च किया जाता है और उदारता के साथ खर्च करने पर अपव्यय अवश्य होता है।

(४) हमको इस बात को भी स्वीकार नहीं करना चाहिए कि अनुभवहीनता के कारण कुछ अपव्यय तो अनिवार्य हो जाता है। यदि उत्तरदायी मनुष्यों के मस्तिष्क में इस प्रकार की भावना घर कर जाती है तो अपव्यय किसी प्रकार भी नहीं रोका जा सकता।

(५) हमको इस बात की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि किसी-किसी विभाग में फिजूलखर्ची हो रही है और वह भी बहुत मामूली हो रही है। यह “मामूली” प्रत्येक फ़ैक्ट्री में, प्रत्येक उद्योग में, प्रत्येक सरकारी दफ्तर में तथा प्रत्येक क्षेत्र में पाई जाती है। से इमामूली समझ कर लोग इसकी उपेक्षा कर देते हैं। किन्तु इसी प्रकार की मामूली फिजूलखर्चियों के न रोकने से बड़े भयंकर परिणाम निकल सकते हैं। सब विभागों के ये छोटे-छोटे फिजूल खर्च मिला कर बहुत बड़े हो जाते हैं और पाँच, दस तथा बीस वर्ष में तो ये विकराल रूप धारण कर लेते हैं।

यदि हम इन फिजूल खर्चों को “मामूली” ही समझते रहे तो हम इनको जड़-मूल से तुरन्त उखाड़ कर फेंक देने को कभी बड़ी आवश्यकता न समझेंगे, अपितु उनकी उपेक्षा करते जायेंगे।

यदि हमको क्रियात्मक मितव्ययिता का आन्दोलन उठाना है तो हमको उपर्युक्त सभी भ्रान्त धारणाओं को छोड़ना होगा ।”

×

×

×

मेरा विश्वास है कि उक्त अंशों के पढ़ने के बाद हमारे ध्यान में ऐसी अनेक आलीशान इमारतें आयेंगी जिनमें अधिकतर अनुत्पादक हैं । इनमें से बहुत-सी सरकारी, बहुत-सी सरकार नियन्त्रित संस्थाओं की तथा फेक्ट्रियों की, बहुत-सी कारपोरेशनों की और विकास-योजनाओं की हैं । इनके साथ-साथ वे वक्तव्य भी हमारे मस्तिष्क में आयेंगे जो उनके औचित्य प्रदर्शन करने के लिए समय-समय पर दिये गये हैं और हम अनुभव कर सकेंगे कि वे उन पर भी लागू होंगे ।

कुछ समय से मैं भी इसी प्रकार सभी कामों में और विशेषकर निर्माण के कामों में बचत करने तथा फिजूलखर्ची के रोकने पर जोर देता रहा हूँ । किन्तु मेरे सुभावों पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया है । मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि कहावत है ‘अन्त भला सो भला’ । अभी कुछ ही दिन हुए कि श्री देशमुख ने लोकसभा में बताया था कि टैक्स की चोरी ४० करोड़ रु० प्रतिवर्ष से अधिक नहीं है किन्तु ‘सेन्ट्रल बोर्ड आफ् रेवेन्यू’ का अनुमान इससे चौगुने से भी अधिक है । यह संख्या केन्द्रीय वित्त मन्त्री की अपेक्षा प्रो० सी० कोडोर के अनुमान के करीब है । मेरी सभझ में नहीं आता कि श्री देशमुख इस बड़े अन्तर का क्या उत्तर देंगे । ऐसा प्रतीत होता है कि श्री देशमुख पुरानी दुनिया में रह रहे हैं । मेरी सभझ से तो उन्हें बचत के सम्बन्ध में भी अपने विचार बदलने होंगे ।

मेरा विश्वास है कि सभी मतों के लोग प्रशासनिक कार्यों में बचत तथा कुशलता के समर्थक होंगे । यदि किसी कारणवश राष्ट्रीय विकास परिषद् (नेशनल डेवेलपमेण्ट काउंसिल) ऊपर कहे हुए सुभावों के अनुसार दूसरी समिति की नियुक्ति नहीं करती, तो मेरा सुभाव है कि केन्द्र तथा राज्य की सरकारों के तमाम खर्च, चाहे वह योजना के अन्तर्गत विकास योजनाओं से सम्बन्ध रखें या न रखें, उस उच्च शक्तिशाली समिति को विचारार्थ सौंप दिये जायें जिसकी पहले से नियुक्ति हो चुकी है । जाँच में कुछ समय लग सकता है, तब तक के लिए मेरा सुभाव है कि समिति राज्यों तथा केन्द्र के लिए कुछ ऐसे देश-व्यापी सिद्धान्त बना ले जिससे वह बचत करने के तथा फिजूलखर्ची को रोकने के प्रयत्न कर सके ।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि योजना के लिए हमारे पास जो भी साधन हैं उनको ध्यान में रख कर हमें योजना को पूर्णतया सफल बनाने के लिए योजना की अवधि तक हर प्रकार की बचत के प्रयत्न करने चाहिए और प्रशासनिक कार्य में कुशलता लानी चाहिए । इससे लोगों को चेतावनी तथा प्रेरणा तो मिलेगी ही, साथ-साथ हीन राजस्वन की आशंका भी कम हो जायगी और मुद्रा स्फीति का जो भय है, वह भी जाता रहेगा ।

अध्याय ६

अन्नोत्पादन

मसूरी के खाद्य मन्त्री सम्मेलन में योजना की एक कमजोरी पर और प्रकाश डाला गया है। इससे ज्ञात होता है कि केन्द्र के दो प्रमुख मन्त्रियों में खाद्य समस्या के सम्बन्ध में गहरा मतभेद है। केन्द्रीय योजना मन्त्री तो योजना आयोग के सुभाव के अनुसार मुद्रा स्फीति को रोकने के लिए द्वितीय योजना काल में कृषि सम्बन्धी उत्पादन में ४० प्रतिशत की वृद्धि तथा कृषि सम्बन्धी पैदावार के मूल्य में २० प्रतिशत की कमी पर जोर देते हैं और खाद्य मन्त्री का कथन है कि—“मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ कि इस सीमित धन राशि के लगाने से अन्न का उत्पादन ४० प्रतिशत बढ़ जायगा। अतः मैंने तो इस सम्बन्ध में मौन रहना ही उचित समझ लिया है।” मूल्य की कमी के सुभाव के सम्बन्ध में उनका मत है कि इसका इलाज तो रोग से बढ़ कर हानिकारक सिद्ध होगा।

यद्यपि केन्द्रीय योजना मन्त्री ने यह स्पष्ट कह दिया था कि भिन्न-भिन्न मदों के लिए जो नपी-तुली धन-राशि निश्चित की गई है, उसमें अब और बढ़ती की सम्भावना नहीं है, किन्तु आश्चर्य की बात है कि सम्मेलन ने एक प्रस्ताव पास कर अतिरिक्त उत्पादन के लिए १०१ करोड़ रुपये की माँग और स्वीकृत करा ली है। सुनने में आया है कि दो विरोधी पक्षों में इस विषय पर खूब गरमागरम बहस हुई थी।

खाद्य मन्त्री बड़ी होशियारी से इस विषय में चुप्पी साध लेते हैं; किन्तु क्या वे इस चुप्पी से उस उत्तरदायित्व से बच सकते हैं जो हमारे प्रधान मन्त्री ने अपने लोक सभा के भाषण में उन पर डाली है। वास्तव में यह तो योजना के लिए एक अपशकुन ही होगा कि योजना के सम्बन्ध में अपने सन्देहों तथा मतभेदों को केन्द्र के प्रमुख मन्त्रिगण जनता के सामने प्रकट करने लगे। आवश्यक यह है कि वे इस योजना

को अपनी समझ कर इस पर मिल-जुल कर विचार करें और फिर उसे जनता के सामने रखें तथा फिर इसे सफल बनाने के लिए एक टीम की तरह जी-जान से जुट जायें। अब भी उनसे यही आशा है कि वे संयुक्त उत्तरदायित्व का आदर्श उपस्थित करेंगे।

बहरहाल हमें तो इस समय यह विचार करना है कि अन्न का उत्पादन किस प्रकार बढ़ाया जाय और उसके लिए अतिरिक्त धन किन साधनों से प्राप्त किया जाय ? वस्तुतः अन्न के उत्पादन का बढ़ जाना अथवा अन्न के मूल्य का गिर जाना ही मुद्रा स्फीति को रोकने के लिए पर्याप्त नहीं है, अपितु अधभूखी जनता की आवश्यकताओं को पूरा करना भी जरूरी है। खाद्य विशेषज्ञों के अनुसार प्रति बालिग के लिए प्रतिदिन कम से कम ३००० कलरी भोजन होना चाहिए, किन्तु इस समय केवल २२०० कलरी भोजन ही उपलब्ध है।

कृषि सम्बन्धी उत्पादन की समस्या पर विचार करते हुए योजना के मसविदे में कहा गया है कि “जो थोड़ी-बहुत सूचना मिली है उससे ज्ञात होता है कि प्रथम योजना काल में विकास के जो कार्यक्रम बने थे और उनमें कृषि सम्बन्धी उत्पादन बढ़ाने के जो प्रयत्न किये गये थे, वे इस प्रकार हैं—सिचाई कम हुई, खादों का उपयोग अधिक हुआ, भूमि का सुधार बढ़ा और कृषि योग्य भूमि का विस्तार हुआ।”

आगे कहा गया है कि प्रथम योजना काल में कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल २५ करोड़ ७० लाख एकड़ से बढ़ कर २७ करोड़ ३० लाख एकड़ हो गया है। किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि सब को जोड़ कर तुलना करने पर खेतिहर भूमि का प्रतिशत ७६ की जगह ७७ ही रह गया है। प्रथम योजना में इस तथ्य की ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया है और योजना के मसविदे में इसकी चर्चा तक नहीं की गई है। सितम्बर १९५५ में मैंने ‘लेबर एण्ड वर्कर्स कोओपरेटिव’ शीर्षक लेख के द्वारा योजना आयोग का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। यहाँ उसके कुछ अंशों को उद्धृत करना उचित ही होगा :—

“क्या यह सत्य नहीं है कि प्रत्येक गाँव में औसतन दस एकड़ खेतिहर भूमि हर फसल में किसी न किसी कारण बिना जुती रह जाती है ?”

पहले यह चलन था कि जो किसान अपनी सारी जोतों को नहीं जोत पाता था, वह उन्हें बटाई पर उठा देता था। किन्तु अब नये लगान कानून के कारण वह ऐसा करने में डरता है। इसका अर्थ यह हुआ कि

लगभग ५० लाख एकड़ खेतिहर भूमि बिना जुती रह जाती है, जिससे ५-६ लाख मजदूरों को काम मिल सकता है। दूसरी बात यह कि क्या यह सत्य नहीं है कि पहले से ज्यादा भूमि में अब खेती होती है किन्तु अच्छे बीज तथा अच्छे खाद देने पर तथा सिंचाई की पहले से अच्छी व्यवस्था होने पर भी प्रति एकड़ पैदावार घटती गई है ? इसका उत्तर प्रमुख रूप से यही दिया जायगा कि अब किसान किसनई के भिन्न-भिन्न कामों में पर्याप्त मजदूर नहीं लगा सकता। पहले मजदूरी का यह नियम था कि किसान फसल कटने पर मजदूरों को गल्ला दे देता था, किन्तु अब अर्थ-व्यवस्था बदल गई है और अब मजदूरों को पैसा देना पड़ता है। अतः अब बुआई, सिंचाई, नराई, कटाई इत्यादि कामों में पहले के आधे मजदूर लगाना भी किसान के लिए कठिन हो गया है। क्या ऐसा कोई तरीका नहीं निकाला जा सकता, जिसके अनुसार किसान को बेकार अथवा अल्प वेतन-भोगी मजदूर मिल जायें और वह उनकी आधी मजदूरी उसी समय और आधी फसल पर अन्न के रूप में या पैसे के रूप में चुका दे ?

मैंने अपनी 'लेबर एण्ड वर्कर्स कोओपरेटिव' योजना इस समस्या को हल करने के लिए बनाई थी, इसके द्वारा ग्रामीण क्षेत्र के बेकार और अल्प-वेतन भोगी मजदूरों को कुछ राहत मिल सकती है। इन सहकारी समितियों का सर्व प्रथम उद्देश्य यही होगा—किसानों के लिए ऐसे खेतिहर मजदूरों की व्यवस्था करना, जिनकी मजदूरी का एक अंश उसी समय तथा दोषांश फसल पर पैसे के रूप में अथवा अन्न के रूप में चुकाया जा सके। मैं नहीं जानता कि मेरी इस योजना पर केन्द्रीय कृषि मन्त्रालय ने कुछ ध्यान दिया या नहीं। मुझे तो आशा है कि तब प्रस्तुत धन राशि से ही कृषि-उत्पादन में २५ प्रतिशत की वृद्धि करना सम्भव हो जायगा। मैं आशा करता हूँ कि इस प्रश्न पर गम्भीरता के साथ विचार किया जायगा।

समाचार पत्रों में छपी मसूरी सम्मेलन की कार्यवाही से यह भास होता है कि कृषि मन्त्रियों ने अतिरिक्त धन की माँग करते समय इस बात की जिम्मेदारी नहीं समझी कि योजना के अन्तर्गत वे अतिरिक्त साधनों के बढ़ाने के भी सुझाव देते।

मेरे विचार से खाद्य एवं कृषि मन्त्रालय बड़े अपव्यय के उत्तरदायी हैं। जाहिर है कि वित्त मन्त्रालय भी उनकी माँगों का विशेष ध्यान रखता है किन्तु एस्टीमेट तथा अन्य कमेटियों की जाँच से ज्ञात हुआ है कि वहाँ पर्याप्त मितव्ययिता की आवश्यकता और गुंजाइश है। यदि

कृषि मन्त्रिगण ही अपव्यय रोकने तथा बचत करने पर कसर कस लें तो मुझे आशा है कि आवश्यक अतिरिक्त धन उगाहने की दिशा में एक अच्छा प्रारम्भ होगा । योजना आयोग उस धन को निस्सन्देह इसी मद में लगाने में कोई आपत्ति नहीं समझेगा ।

मैंने 'सार्वजनिक ऋण तथा अल्प बचत' शीर्षक लेख द्वारा योजना आयोग के सम्मुख कुछ सुझाव रखे थे, जिनके द्वारा अपनी बचत को सरकारी ऋणों में लगाने के लिए जनता को बड़ी आसानी से राजी किया जा सकता है । उन सुझावों में से मैं यहाँ एक का उल्लेख किये देता हूँ—वह है 'राशन में बचत' । मेरे अनुमान से इस योजना के द्वारा योजना की अवधि तक ५० करोड़ रु० प्राप्त किया जा सकता है । चूँकि इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध अन्नोत्पादन से है, अतः इसके द्वारा जो धन प्राप्त होगा वह निस्सन्देह सरकारी ऋणों में ही लगाया जायेगा । इस सम्बन्ध में मेरा सुझाव है कि इसके अन्तर्गत जितने भी धन की प्राप्ति हो, वह उस अतिरिक्त धन के पूरा करने में लगा दी जाय, जो ४० प्रतिशत उत्पादन की वृद्धि के लिए आवश्यक है ।

राशन में बचत

अन्न के भावों को निरन्तर बढ़ता हुआ देख कर निश्चित आमदनी के लोग यह अवश्य चाहेंगे कि कोई ऐसी योजना बन जाय, जिसके द्वारा उन्हें निश्चित दर पर गल्ला मिलता रहे । अतः मेरा सुझाव है कि 'राशन में बचत' के बौण्ड जारी किये जायें और इन बौण्डधारियों को यह अधिकार रहे कि वे निश्चित मूल्य पर निश्चित परिमाण में सालभर अन्न खरीद सकें । इसका व्यौरा तैयार किया जा सकता है । इन बौण्डों से जो धन प्राप्त हो उससे गाँवों में कृषक सहकारी समितियों की तथा शहरों में उपभोक्ता सहकारी समितियों की सहायता की जाय । मेरा पक्का विश्वास है कि यह योजना जनता को सबसे अधिक प्रभावित करेगी और प्रतिवर्ष इससे १० करोड़ रु० या अधिक प्राप्त कर लेना कठिन न होगा । इसके अतिरिक्त एक बात और होगी कि जनता की बचतों को प्राप्त करने के साथ-साथ अन्न की दरों को स्थायित्व प्रदान करने का साधन भी सरकार के हाथ आ जायगा ।

योजना आयोग के सुझाव के अनुसार खाद्यान्नों के उत्पादन को प्रोत्साहन दे कर और बीच के व्यापारियों के लाभ को कम कर अथवा बिलकुल समाप्त कर गल्ले के भाव काफी गिराये जा सकते हैं ।

इस प्रकार उत्पादकों को भी विश्वास दिलाया जा सकता है कि उन्हें अपने माल का उचित मूल्य मिलेगा। उदाहरण के लिए यदि उपभोक्ताओं को गेहूँ १५ रु० मन बेचा जाता है तो उत्पादकों को उसका मूल्य १३ रु० मन के हिसाब से दिया जा सकता है। २ रु० मन यातायात तथा ऊपरी खर्च के लिए पर्याप्त रहेगा।

अन्त में मुझे पूरी आशा और विश्वास है कि नियोजक तथा कृषि मन्त्री उद्युक्त समस्या पर गम्भीरता पूर्वक एकाग्र चित्त से विचार करेंगे, उत्तरदायित्व को एक दूसरे पर डालते रहना गलत है।

अध्याय ७

बागवानी

दूध की तरह मनुष्य की खुराक में फल तथा साग-सब्जी का भी बड़ा महत्वपूर्ण और आवश्यक स्थान है। हमारे देश के अधिकांश लोगों को अपौष्टिक भोजन करना पड़ता है। खाद्यान्नों का पर्याप्त मात्रा में न मिलना ही इसका एकमात्र कारण नहीं है, अपितु स्वस्थ बढ़ोतरी के लिए आवश्यक पौष्टिक खाद्य पदार्थों की काफी कमी भी इसका कारण है। पोषण विशेषज्ञों के अनुसार सन्तुलित खुराक के लिए ३ औंस फल तथा १० औंस साग-सब्जी प्रतिदिन आवश्यक हैं। भारत के लिए इनका महत्व और भी अधिक है, क्योंकि देश की अधिकांश जनता शाकाहारी है। यद्यपि ठीक संख्या तो नहीं दी जा सकती, किन्तु प्रथम पंचवर्षीय योजना में साग-सब्जी की खेती का अनुमान ४ लाख एकड़ लगाया गया था। इसका अभिप्राय है यह है कि यह कुल खेती के एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि फलों की पैदावार ६० लाख टन है और साग-सब्जी की पैदावार ४० लाख टन। फलों में २५ प्रतिशत खराब जाते हैं, अतः एक व्यक्ति द्वारा प्रतिदिन उपयोग का औसत १.५ औंस होता है, साग-सब्जी का औसत तो और भी कम। नियोजकों ने माना है कि फल तथा साग-सब्जी के उत्पादन तथा उपभोग के बढ़ाने की बहुत आवश्यकता है और सम्भावना भी काफी है। इसी बात को ध्यान में रख कर उन्होंने अनेक सिफारिशें की हैं; किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि गत पाँच वर्ष के भीतर इस दिशा में बहुत ही कम काम हुआ है, क्योंकि प्रथम योजना की प्रगति की रिपोर्ट में इसके सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा गया है। द्वितीय योजना में इसके सम्बन्ध में स्वीकार किया गया है कि “इस समय प्रति व्यक्ति १.५ औंस फल तथा १ औंस साग-सब्जी पड़ जाती है।” इसमें यह भी स्वीकार किया गया है कि “खुराक में पौष्टिक पदार्थों के देने के लिए तथा कृषि सम्बन्धी उत्पादन में विविधता लाने के लिए फल तथा साग-सब्जी का उत्पादन नितान्त आवश्यक है।”

बागवानी के इस महत्त्व को मानते हुए भी द्वितीय पंचवर्षीय योजना में केवल एक पैरे में इसे खत्म कर दिया गया है, जबकि पशुपालन, डेरी, दुग्ध पूर्ति, वन तथा भूमि संरक्षण पर कुछ अधिक विचार किया गया है। उत्पादन के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में बहुत कम प्रगति हुई है। इस बात को मद्दे नजर रखते हुए, यह आवश्यक था कि इस पर विस्तार से विचार किया जाता। यह आवश्यक था कि इसके विकास के सम्बन्ध में सब लोगों को इसके विकास की योजनाएँ समझाई जातीं। नियोजकों को चाहिए था कि वे इसका महत्त्व बतला कर उन बाधाओं को भी बताते, जिनके कारण प्रथम योजना काल में इसकी उन्नति नहीं हो सकी। इस योजना में बागवानी के विकास के लिए ८ करोड़ रुपया रखा गया है। नये बाग लगाने के लिए किसानों को जो ऋण दिया जायगा, वह दीर्घकालीन किस्तों में वसूल होगा और पुराने बागों के सुधारने के लिए जो ऋण दिया जायगा, वह अल्पकालीन किस्तों में वसूल होगा। राज्य सरकारों ने ५ लाख एकड़ रकबे के पुराने बागों के सुधारने की तथा २ लाख एकड़ रकबे के नये बाग लगाने की योजना बनाई है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि योजना में इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या को सुलझाने के लिए गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया है और बागवानी की उन्नति के जो सुझाव दिये गये हैं वे भी कामचलाऊ ही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि योजना आयोग के किसी भी सदस्य ने सुनियोजित आधार पर इस विषय के सम्बन्ध में गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस समस्या से सम्बन्ध रखने वाले कुछ तथ्यों को श्रेणियों में बाँट कर उन पर विचार किया गया है, यदि द्वितीय योजना के नियोजक उनको ध्यान में रखते, तो मुझे विश्वास है कि वे इस विषय में चलताऊ दृष्टिकोण न अपनाते। ऊपर कहा जा चुका है कि लगभग ३० लाख एकड़ में फलों की और १ लाख एकड़ में साग-सब्जी की पैदावार का अनुमान है। हिसाब लगा कर देखा गया है कि प्रति व्यक्ति के हिस्से में प्रतिदिन १.५ औंस फल आते हैं और १ औंस सब्जी आती है, जबकि सन्तुलित खुराक के लिए ३ औंस फल और १० औंस सब्जी होनी चाहिए। इस हिसाब से फलों की पैदावार कम से कम ३० लाख एकड़ भूमि में तथा सब्जी की पैदावार कम से कम ६० लाख एकड़ भूमि में और बढ़ानी चाहिए। पहली योजना में यह भी बताया गया है कि लगभग २५ प्रतिशत फल नष्ट हो जाते हैं। विनाश की जितनी ही अधिक रोकथाम की जा सके, एकड़ों की संख्या उतनी ही अधिक घटाई जा सकती है। इस योजना में इन बातों का उल्लेख

भी नहीं है और न यही बताया गया है कि देश की आवश्यकता के अनुरूप साग-सब्जी तथा फल पैदा करने में कितना समय लगेगा ।

जहाँ तक फलों तथा साग-सब्जी की सुरक्षा का प्रश्न है, उसके लिए विशेषज्ञों तथा इस उद्योग से सम्बन्ध रखने वालों के प्रतिनिधियों का का एक मण्डल नियुक्त कर दिया गया था । इस मण्डल ने समस्या के सभी पहलुओं पर परिश्रम के साथ विचार कर अपनी जो रिपोर्ट दी है उसमें अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशें हैं । किन्तु योजना में उनका कोई हवाला नहीं दिया गया है । इसमें केवल इस बात का उल्लेख कर दिया गया है कि खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय ने फल तथा साग सब्जी के विकास तथा सुरक्षा के लिए डिब्बाबन्दी (फल संरक्षण) उद्योग को सहायता देने व शीत गोदामों की स्थापना करने के लिए १७५ करोड़ रु० रखा है, जबकि मण्डल ने ७ या ८ करोड़ रु० की सिफारिश की थी । योजना में यह भी कहा गया है कि यद्यपि मण्डल ने डिब्बाबन्दी के लिए १ लाख टन फलों की सिफारिश की थी, किन्तु योजना में २० हजार टन से बढ़ा कर ५० हजार टन फल कर दिये हैं ।

इस उद्योग के लिए विस्तृत क्षेत्र है, यह इस बात से सिद्ध है कि इस समय कुल पैदावार की केवल १२ प्रतिशत डिब्बाबन्दी की जाती है और १५ से २० प्रतिशत फल तथा साग-सब्जी बेकार चली जाती है । पैदावार में ३ हजार टन बढ़ाने के बाद भी हम उत्पादन के केवल ३ प्रतिशत की ही डिब्बाबन्दी कर पा रहे हैं । यदि योजना आयोग, खाद्य तथा कृषि मन्त्रालय अपना सारा ध्यान इधर लगा कर ५० प्रतिशत भी फल तथा सब्जी के संरक्षण का उपाय सोच कर इसे बचाने का प्रयत्न करे, तो बहुत बड़े विनाश को रोक कर जनता तथा इस उद्योग की बहुत बड़ी सेवा हो सकती है ।

मेरे विचार से फल तथा साग-सब्जी की कमी को पूरा करने के लिए दो प्रबल प्रयत्न करने होंगे । एक ओर फल तथा साग-सब्जी की पैदावार को बढ़ावा देने के लिए साधन ढूँढ़ने होंगे, दूसरी ओर इनके विनाश को रोकने के लिए जोरदार कदम उठाने होंगे ।

ऊपर बताया जा चुका है कि हमको फलों की पैदावार दुगुनी तथा साग-सब्जी की पैदावार पँचगुनी बढ़ानी होगी । इस समय सरकार ने पुराने बाग सुधारने के लिए तथा नये बागों के लगाने के लिए किसानों को आर्थिक सहायता देने का विचार किया है । इस काम की दीर्घता को देखते हुए ये प्रयत्न न कुछ के बराबर हैं । इस सीमित सहायता के भी अप्रत्यक्ष और दुरुपयोग की ही आशंका है, जिसका नतीजा यह होगा कि न तो किसानों को ही पूरा लाभ मिलेगा और न सरकार को । अतः

मैंने एक योजना बनाई है, जिसके द्वारा राज्य सरकारें अथवा राज्य सरकारों के नियन्त्रण में काम करने वाले विकास संघ योजना की अवधि के भीतर ही पाँच लाख एकड़ में एक-दो लाख बाग लगा सकेंगे और साग-सब्जी के फार्म बना सकेंगे, जिन्हें तैयार हो जाने के बाद जनता को बेचा जा सकेगा ।

इस काम के लिए आवश्यक धन उद्यान संरक्षण बौण्ड बेच कर प्राप्त किया जा सकता है । इन पर तीन प्रतिशत सूद हो और पाँच वर्ष बाद इनका भुगतान हो । इस योजना के अन्तर्गत तैयार किये गये बागों को बेचते समय इन बौण्डधारियों को खरीदने की प्राथमिकता दी जाय ।

मेरा विश्वास है कि जमींदारी उन्मूलन तथा मकान *किराया-कानून लागू हो जाने के कारण मध्यवर्गी तथा वेतनभोगियों, विशेषकर उन लोगों के लिए जो रिटायर होने जा रहे हैं या जिनके आश्रित बेरोजगार हैं, ये बौण्ड बड़े आकर्षक सिद्ध होंगे । केलीफोर्निया तथा इसराइल के अनुभव से भी मालूम होता है कि बाग कई कारणों से बड़े लोकप्रिय होते हैं । दोनों देशों में या तो सरकारों ने या निजी संघों ने बिक्री के लिए बाग लगवाये हैं । हम प्रकार लगाये गये बागों की लागत व्यक्तित्वगत बागों की अपेक्षा लगभग ५० प्रतिशत कम पड़ी है, क्योंकि वे पाँच-पाँच, दस-दस एक साथ लगाये जाते हैं । सहकारी प्रबन्ध के कारण उनके पोषण का खर्च भी बहुत कम पड़ता है ।

बागवानी के विशेषज्ञों से सलाह करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्रति एकड़ बाग लगवाने में लगभग ५०० रु० कुल लागत होगी और ५ वर्ष बाद ५०० रु० वार्षिक की शुद्ध बचत होने लगेगी । पाँच वर्ष तक साग-सब्जी इत्यादि की आमदनी होती रहेगी, किन्तु वह बागों की सार-सम्भाल में लग जायगी । इसका तात्पर्य यह है कि ५ बीघे के एक बाग से एक मध्यवर्गी परिवार जीवन-यापन कर सकता है । इतना ही नहीं, इतनी आय से एक ग्राम विद्यालय अथवा चिकित्सालय भी चलाया जा सकता है । केन्द्रिय सरकार द्वारा प्राप्त आर्थिक सहायता के बल पर शुरू किये गये स्कूलों का खर्च उठाने में राज्य असमर्थ हैं । बागों के द्वारा उन्हें आत्मनिर्भर बनाना लाभदायक सिद्ध होगा ।

इस काम के लिए भूमि का मिलना भी कोई कठिन बात नहीं है । सरकार ऐसी भूमि नदी घाटी योजना के क्षेत्र में, रेलवे लाइन या नहर

के सहारे अथवा जमींदारी उन्मूलन से प्राप्त भूमि में से दिला सकती है। किसानों को बागों के लिए ऋण देने की अपेक्षा तो इसमें मितव्ययिता होगी कि राज्य सरकार या कारपोरेशन जमीन ले लें और उपयुक्त शर्तों पर बाग लगवा दें।

मैं पहले बता चुका हूँ कि इस योजना से जनता को इसमें बचत का रुपया लगाने की प्रेरणा ही नहीं मिलेगी अपितु ५ लाख व्यक्तियों को प्रत्यक्ष रूप से तथा ५ लाख व्यक्तियों को अप्रत्यक्ष रूप से काम मिल जायगा। इससे प्रतिवर्ष २५ करोड़ रुपये की विशुद्ध बचत तो होगी ही, साथ-साथ जनता के लिए कम से कम २० प्रतिशत अधिक पौष्टिक खाद्य उपलब्ध हो जायगा।

प्रारम्भ में योजना के चालू करने में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य आयेंगी, किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि एक बार काम चालू हो गया तो बहुत से लोगों का ध्यान इधर खिंच जायगा। इसके विकास के साथ-साथ इससे सम्बन्धित पौधघर, फल तथा सब्जी संरक्षण, मधु-मक्खी पालन, गौ सदन तथा मुर्गी पालन इत्यादि का भी अधिक विकास होगा। इनके द्वारा शिक्षित बेनारों के खपाने के लिए भी अच्छा अवसर मिल जायगा।

यह योजना लगभग आत्मनिर्भर होगी, अतः जनता से प्राप्त धन से ही इसका काम चल सकता है।

फल तथा साग-सब्जी के उत्पादन बढ़ाने के सुझावों के बाद मैं अब इस समस्या के दूसरे पहलू पर प्रकाश डालूँगा। यह है, इनके २५ प्रतिशत विनाश को रोकना।

विनाश के प्रमुख कारण दो हैं— एक तो यातायात की पर्याप्त सुविधाओं का अभाव और दूसरा संरक्षण की सुविधाओं की अनुपस्थिति। यातायात के सम्बन्ध में तो पहले ही कहा जा चुका है कि गाँवों से समीपस्थ कस्बे तक नियमित माल ले जाने के लिए सहकारी आधार पर व्यवस्था संगठित की जाय एवं यातायात के विभिन्न साधनों के बीच सहयोग स्थापित किया जाय। इस सम्बन्ध में मैं केवल एक-दो सुझाव दूँगा।

अधपके फलों को तथा साग-सब्जियों को उत्पादन स्थान से संरक्षण केन्द्रों तथा फैक्ट्रियों में भेज देने से इनका बहुत-कुछ विनाश बचाया जा सकता है। इस समय पके फल तथा सब्जी की अपेक्षा अधपके फलों तथा सब्जी के पार्सल का महसूल अधिक है। मेरे विचार से दोनों

का महसूल एक-सा कर दिया जाय। ऐसा करने से रेलवे को थोड़ा-बहुत घाटा अवश्य होगा, किन्तु इससे जनता तथा इस उद्योग को बहुत बड़ी सहायता मिल जायगी।

फल तथा साग-सब्जी संरक्षण उद्योग बागवानी का आवश्यक तथा अनिवार्य सहायक उद्योग है। यह उद्योग हमारे देश में प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में प्रचलित है। बागवानी का विकास तथा फल और साग-सब्जी के संरक्षण का उद्योग साथ-साथ चलते हैं। पहले कहा जा चुका है कि इस विषय के विशेषज्ञों के एक मण्डल ने फल तथा साग-सब्जी की उन्नति एवं संरक्षण के उद्योग के सम्बन्ध में एक योजना बनाई थी और इसके विकास के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये थे। मुझे आशा है कि योजना आयोग उन पर आवश्यक ध्यान देगा। इस उद्योग का विकास छोटे या बड़े पैमाने के कुटीर उद्योग के आधार पर हो सकता है, अतः मेरा सुझाव है कि उन्हें व्यवस्थित करने के लिए अलग नियम बना दिये जायें। जिस प्रकार १० एकड़ से कम नमक बनाने वाले कारखानों को लाइसेन्स नहीं लेना पड़ता है, उसी प्रकार कुटीर उद्योग के आधार पर चलने वाले इस उद्योग पर भी लाइसेन्स के उन नियमों का प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए, जो बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों के लिए आवश्यक होते हैं।

गांवों में फल तथा साग-सब्जी की सुरक्षा के साधारण तरीके ये हैं :—

(१) धूप में सुखाना, (२) रस निकाल कर रखना, (३) मुरब्बा बनाना।

केवल फलों के सुखाने के उद्योग से ही बहुत से ग्रामीण पुरुषों और विशेषकर स्त्रियों को काम मिल सकता है।

डिब्बेबन्द फल तथा साग-सब्जियों के निर्यात व्यापार के विस्तार तथा विकास की अभी बहुत गुंजाइश है। विदेशी बाजारों में आम की चटनी, डिब्बेबन्द आम, अमरुद, पपैये आदि भारत की विशेष चीजों की माँग बराबर बढ़ रही है। यदि इनके उत्पादन तथा बिक्री का अच्छा प्रबन्ध कर दिया जाय, तो यह उद्योग बहुत उन्नत तथा स्थायी हो सकता है। हमारे देश में १००० टन फल से निर्मित वस्तुओं तथा शहद का आयात होता है, इसे रोका जाना चाहिए, क्योंकि इनके आयात से देश के उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए विदेशों से मुरब्बे के आयात के कारण हमारे मुरब्बे के उद्योग को बहुत हानि होती है।

सभी बातों पर दृष्टिपात करके के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि इस उद्योग का विकास द्वितीय योजना की सफलता में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो सकता है। इसके विकास से हमारे साधन बढ़ जायेंगे और लगभग १० लाख व्यक्तियों को काम मिल सकेगा। इसके साथ-साथ इसके तथा दूसरे उद्योगों के लिए विकास का एक दृढ़ आधार भी प्राप्त हो जायगा।

अध्याय ८

पशु पालन

आदि काल से ही भारत का प्रधान व्यवसाय कृषि रहा है। बैल इस व्यवसाय के प्रधान अंग रहे हैं और गौ का दूध सर्व साधारण का मुख्य पुष्टिकारक साधन रहा है। पशु-धन इसके आर्थिक ढाँचे की रीढ़ है। अच्छे नस्ल के पशुओं की वृद्धि से यहाँ के किसानों की आर्थिक तथा सामाजिक दशा सुधर सकती है और देश की राष्ट्रीय आय भी बढ़ सकती है। अब भी इसके द्वारा विभिन्न तरीकों से अनुमानतः १५ से २० प्रतिशत आय होती है। देश के पुनर्निर्माण की जो भी योजना बनाई जायगी, उसमें पशु-धन तथा दूध की पर्याप्त तादाद में वृद्धि को प्रथमिकता देनी होगी। किन्तु बड़े दुःख की बात है कि न तो प्रथम योजना काल में इसकी उन्नति के लिए कोई प्रयत्न किया गया था और न द्वितीय योजना के मसविदे में ही इस पर सन्तोषजनक ध्यान दिया गया है। इस महत्वपूर्ण विषय की कौसी उपेक्षा की गई है, इसे योजना के मसविदे में स्वीकार करते हुए कहा गया है कि, “इस समय पशु-पालन तथा दुग्ध उद्योग से ग्रामीणों की अधिक आर्थिक उन्नति की जा सकती थी और उनके रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाया जा सकता था, किन्तु इस दिशा में आंशिक सफलता ही प्राप्त की जा सकी है।” द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पशुपालन तथा दुग्ध उद्योग की उन्नति के लिए ५६ करोड़ रुपया रखा गया है और आशा की जाती है कि आगामी वर्षों में खेती के इस प्रधान अंग की ओर अब और अधिक ध्यान दिया जायगा। यह कथन सुनने में तो अच्छा है, किन्तु है अस्पष्ट। नियोजकों को कम से कम यह तो बता ही देना चाहिए था कि कृषि के इस प्रधान अंग की उन्नति में क्या-क्या बाधाएँ आ रही हैं, जिन्हें आगामी वर्षों में दूर कर देश की आर्थिक उन्नति की जा सकती है। इस सम्बन्ध में उन लोगों के वक्तव्य भी ध्यान से पढ़ने योग्य हैं जिन्हें पशुओं की उन्नति का उत्तरदायित्व सौंपा गया है।

१९५१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार भारत में पशुओं की संख्या इस प्रकार है .—

गायें	(लाखों में)
प्रजनन योग्य गायें	४६३.४
प्रजनन योग्य साँड़	६.५
बैल	५८४.१
गायें	२३.१
बच्चे	४३४.९
अन्य	३८.९
योग	१५५०.९

भैंसें	
प्रजनन योग्य भैंसें	२०९.९
प्रजनन योग्य भैंसे	३.१

काम में आने वाले

भैंसे	६०.१
भैंसें	५.३
बच्चे	१४७.३
अन्य	७.८

योग ४३३.५

योजना के मसविदे में कहा गया है कि यद्यपि १९५०-५१ में देश में पशुओं की संख्या इतनी अधिक थी, किन्तु उनसे जो कुल उत्पादन हुआ उसका वास्तविक मूल्य ६६४ करोड़ रु० है या कृषि आय का केवल १६ प्रतिशत । अब प्रश्न यह है कि प्रथम योजना का निर्माण करते समय १००० करोड़ रु० आँका गया था, फिर यह इतना कम क्यों रह गया ? सन् १९३५ में अमरीका के दुग्ध उद्योग के विशेषज्ञ डा० एन० सी० राइट ने पशुओं से १००० करोड़ रु० की आय का अनुमान लगाया था, जिसका मूल्य इस महँगाई में कम से कम ३००० करोड़ रु० होना चाहिए । इसी प्रकार अखिल भारतीय पशु-पालन शाला, इज्जतनगर के प्रधान श्री एन० डी० केहर ने भी इस साधन से ३००० करोड़ रु० की आय का अनुमान लगाया था । नियोजकों को कम से कम यह तो बताना ही चाहिए था कि ६६४ करोड़ रु० के आँकड़े किस प्रकार आये हैं ? यदि इन्हें सही मान लिया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि जहाँ हम उद्योग

इत्यादि के उत्पादन में वृद्धि का दावा करते हैं, वहाँ पशु-धन में कम से कम ४४ प्रतिशत का ह्रास अवश्य हुआ है। सन्तोषजनक उत्तर के अभाव में यही कहना पड़ेगा कि हमारे पशु-धन का ह्रास तथा विनाश ही इसके कारण हैं। आयोजना के मसविदे के देखने से पता चलता है कि हमारे पशु-धन की कैसी दुर्दशा है और आयोजन में इसकी कैसी उपेक्षा की गई है। संविधान की ४८ वीं धारा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य सरकारें आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से कृषि एवं पशुओं की उन्नति का प्रयत्न करेंगी और नस्ल सुधारने तथा गौ, बछड़े तथा अन्य दुधार पशुओं का वध रोकने का विशेष प्रयत्न करेंगी। संविधान के इस स्पष्ट आदेश के बावजूद विगत ६ वर्षों में हमारे पशुओं की दशा निश्चित रूप से गिरती गई है। नियोजकों को चाहिए था कि वे इस पर अमल करने के सम्बन्ध में ठोस तथा क्रियात्मक सुझाव देते, किन्तु उन्होंने ऐसा करने के बजाय कहा है कि इस आदेश का पालन करते समय हमको ऐसी सावधानी रखनी चाहिए जिससे ऐसी परिस्थिति पैदा न हों, जिनसे संविधान बचने के लिए कहता है। इतना ही नहीं, उन्होंने तो उस विशेषज्ञ समिति का भी हवाला दिया है, जिसने यह निष्कर्ष निकाला है कि सम्पूर्ण पशुओं के वध पर रोक लगाने से पशुओं की संख्या बढ़ जायगी तथा देश के अच्छे पशुओं की संख्या और घट जायगी। मेरी समझ से तो नियोजकों को इस समिति की उन सिफारिशों का हवाला ही नहीं देना चाहिए था, क्योंकि इसकी सिफारिशों और संविधान के निर्देशात्मक सिद्धान्तों में तथा विशेषज्ञों की बाद की समिति के विचारों में तालमेल नहीं है। जिन समितियों में केवल सरकारी ही आदमी हों, उनकी सिफारिशों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करने से पूर्व उन पर लोक सभा में विचार कर लेना जरूरी है।

यहाँ इस समिति की सिफारिशों के सम्बन्ध में भी दो शब्द कह देना अनुचित न होगा, ताकि पाठक स्वयं समझ लें कि समिति का निर्णय कहाँ तक उचित है। इसकी रिपोर्ट पर मौलिक आपत्ति तो यही है कि यह समिति पशु-वध को रोकने के उद्देश्य से बिठाई गई थी, जैसा कि इसके नाम से सिद्ध है, किन्तु इसने पशु-वध की सिफारिश की है, अलबत्ता उसने इस कटु बात को इन कोमल शब्दों "व्यर्थ पशुओं को हटा देने की प्रक्रिया" के द्वारा व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ, इस समिति ने पशु-वध पर रोक लगाने को अस्वीकृत किया है और गौसदनों की स्थापना के विपक्ष में अपना मत दिया है। पंजाब से कलकत्ता तथा बम्बई को भेजे जाने वाले पशुओं

पर पाबन्दी लगाने का भी समिति ने विरोध किया है। ये सिफारिशें उन निष्कर्षों पर आधारित हैं, जिसमें तथ्य नहीं। समिति ने यह निष्कर्ष निकाला है कि देश में चारे तथा दूसरे साधनों की इतनी कमी है कि वह वर्तमान पशुओं के लिए भी बिल्कुल नाकाफी है। देश के सम्पूर्ण पशुओं के वध पर रोक लगाने से तो पशुओं की संख्या और बढ़ जायगी तथा देश के थोड़े-बहुत 'अच्छे' पशुओं के पालन में भी बाधा पड़ जायगी। यह आम धारणा है कि पशुओं की संख्या आवश्यकता से अधिक है। किन्तु यह कथन तथ्यहीन है। यह बात 'मार्केटिंग ऑफ कैटिल इन इण्डिया' सम्बन्धी १९५६ की रिपोर्ट से सिद्ध है कि "विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा भारत की पशु संख्या अधिक नहीं है। और यहाँ के समुदायिक विकास के लिए मनुष्यों की आबादी के हिसाब से पशुओं का अनुपात भी कम ही है।" (पृष्ठ १)

बेकार पशु—बेकार और अनुत्पादक पशुओं के विषय में बहुत मतभेद है। सरकारी विशेषज्ञों के अनुसार बेकार और अनुत्पादक पशुओं की संख्या लगभग १० प्रतिशत से ३० प्रतिशत है, किन्तु 'बेकार पशु' की परिभाषा कहीं भी नहीं दी गई है। विदेशी मापदण्ड से तो १ सेर या इससे कम दूध देने वाली गौएँ उत्पादक नहीं मानी जायेंगी, किन्तु यहाँ की परिस्थिति भिन्न है। यदि यहाँ भी १ सेर से कुछ कम दूध देने वाली गौओं को अनुत्पादक मान लिया जाय, तो ६० प्रतिशत से अधिक दुधारू गायें बेकार हो जायेंगी और दूध में भी ७० प्रतिशत की कमी हो जायगी। गौओं का प्रयोजन केवल दूध देना ही नहीं है, उन्हें बछड़ों के लिए भी रखना पड़ता है। चाहे गायों की नस्ल कितनी भी सुधार दी जाय, किन्तु एक गाय एक समय में एक ही बछड़ा देगी। अच्छी नस्ल की गायों से आवश्यकता के अनुरूप संख्या में बैल प्राप्त करने में काफी समय लग जायगा और फिलहाल यह व्यावहारिक समाधान नहीं है। इन सब बातों को मद्दे-नजर रखते हुए पशु संवर्द्धन सलाहकार समिति ने १ सेर या इससे कम दूध देने वाली गायों के पालन और उनकी सुरक्षा का सुझाव दिया है। इस मत की पुष्टि में प्रथम पंचवर्षीय योजना का यह अंश उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा—

"सामान्य पशु-वध से तो पशु समस्या पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा, और सभी बेकार पशुओं का काट डालना भी कोई क्रियात्मक सुझाव नहीं माना जा सकता, अतः हमें इस परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए कोई उपाय सोचना ही होगा। एक उपाय यह हो सकता है कि उस क्षेत्र में पशुओं के बड़े-बड़े शिविर खोले जायें

जहाँ चारे का कोई इस्तैमाल नहीं हो पाता । बूढ़े और बेकार पशुओं को पिंजरापोलों के द्वारा ऐसे क्षेत्रों में भेज देना चाहिए । ऐसा करने से अच्छे पशुओं को चारा मिलने में कमी न रहेगी । इन शिविरों में ऐसा प्रबन्ध अवश्य रखना चाहिए, जिससे पशुओं की स्वाभाविक मृत्यु के बाद उनकी हड्डी, खाल इत्यादि का सदुपयोग होता रहे ।'

अतः सिद्ध होता है कि बेकार पशुओं की समस्या का हल उनको कट्टीखाने भेज देने में नहीं है, अपितु गौसदनों की स्थापना में है । प्रथम पंचवर्षीय योजना में ३,२०,००० बेकार गौ तथा दूसरे पशुओं के पालन-पोषण के लिए १६० गौसदनों की स्थापना की व्यवस्था थी, किन्तु गत पाँच वर्षों में ८,००० पशुओं के लिए केवल २२ गौसदन ही स्थापित हो सके हैं । द्वितीय पंचवर्षीय योजना में केवल ३०,००० बेकार पशुओं के लिए केवल ६० गौसदनों की स्थापना का ही सुभाव है । योजना के मसविदे में गौसदनों की योजना की नितान्त असफलता का कोई कारण नहीं बताया गया है । किन्तु सबसे बुरी बात तो यह है कि नियोजकों ने पशु-रक्षा के जिन सुभावों को पाँच वर्ष पूर्व ठीक समझा था, अब उन्होंने ही उन सुभावों को अनुचित समझ कर राज्य सरकारों को लिखा है कि 'चारे के प्राप्य साधनों के सम्बन्ध में यथार्थ-वादी दृष्टिकोण अपनाया जाय ।' दूसरी ओर यह आरोप सही है कि गौसदन योजना की असफलता का मुख्य कारण यह है कि इस योजना को क्रियान्वित करना उन लोगों को सौंपा गया था, जिनको इस योजना में कोई विश्वास नहीं था । योजना थोड़ी बहुत आत्मनिर्भर बनाई जा सकती है; इसे बताने के लिए तथ्य और आँकड़े भी दिये गये हैं ।

विशेषज्ञ समिति का यह निष्कर्ष कि सम्पूर्ण पशुओं के वध पर रोक लगा देने से बेकार पशुओं की संख्या बढ़ जायगी, पूर्व अनुभव के आधार पर गलत सिद्ध हो जाता है । जम्मू, काश्मीर, राजस्थान, विन्ध्य प्रदेश इत्यादि प्रान्तों में गौवध पर बहुत पहले से रोक लगी है, फिर भी बूढ़े तथा बेकार पशुओं का प्रतिशत आसाम, मद्रास, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल से कम से कम ५० प्रतिशत कम है । इन स्थानों में अब तक गौवध पर कोई रोक नहीं है । इसका मुख्य कारण यही है कि कसाई भी अनेक कारणों से काम के पशुओं को ही काटना उचित समझते हैं ।

बेकार पशुओं के काट देने से चारे की कमी की समस्या हल नहीं हो सकती, क्योंकि इन पशुओं की संख्या बहुत कम है । विशेषज्ञ

समिति ने लिखा है कि यदि सरकार को काम के पशुओं को बचाना है तो उसे ६५ प्रतिशत पशुओं के चारे तथा धन का प्रबन्ध करना होगा। ५ प्रतिशत की समस्या भी सरलता से हल हो सकती है, क्योंकि हमने अपने उत्पादन का लक्ष्य वर्तमान उत्पादन से १५ से ४० प्रतिशत बढ़ाने का निश्चय किया है। खास बात तो यह है कि चारे तथा दाने की बहुत कमी होने पर भी प्रथम योजना में न तो इनकी खपत बढ़ाने के लिए कोई प्रयास किया गया और न योजना के मस-विदे में इसके लिए कोई व्यवस्था की गई है।

भावना की बात जाने दीजिए, वह तो हमारे देश में पशुओं के लिए बहुत प्रबन्ध है, हमारा तो यह कहना है कि इन सम्बन्ध में पशु-पालन विभाग से जो भी तथ्य प्राप्य हैं, उनकी जाँच किसी उच्च शक्ति प्राप्त समिति के द्वारा अवश्य होनी चाहिए। कुछ भी हो, नियोजकों ने विशेषज्ञों की सलाह को चुपचाप मान कर इस महत्वपूर्ण प्रश्न को टाल दिया है, अतः उनका यह काम किसी प्रकार भी न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता।

प्रथम योजना में अच्छी नस्ल के तीन लाख साँड़ तैयार करने का लक्ष्य स्थिर किया गया था, किन्तु द्वितीय योजना में यह संख्या घट कर २२,००० हो रह गई है, किन्तु योजना के मसविदे में इस सम्बन्ध में चुपनी ही लगा ली गई है कि पिछले पाँच वर्षों में अच्छी नस्ल के साँड़ मिलने तैयार हुए तथा साँड़ तैयार करने के हमारे लक्ष्य में इतनी कमी क्यों हो गई? इन साँड़ों से तो हमारे दूर-दूर बिखरे गाँवों की केवल २५ प्रतिशत आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है। पशुओं की नस्ल के मुद्धार के क्षेत्र का जो प्रसार हुआ है, वह भी अपर्याप्त ही है।

दुग्ध उद्योग एवं दुग्ध वितरण

अक्टूबर १९५५ की बात है कि मैंने योजना आयोग के सामने एक विस्तृत स्कीम रखी थी जिसका उद्देश्य सहकारिता के आधार पर ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में दूध का उत्पादन तथा दूध का वितरण था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। मुझे इस बात की शिकायत नहीं, मुझे इसका उल्लेख भी इसलिए करना पड़ रहा है ताकि मैं नियोजकों को बता दूँ कि विचार करने का आश्वासन दे देने के बाद भी गैर-सरकारी व्यक्तियों के सुझावों की परवा नहीं की जाती। खयाल यह किया जाता था कि द्वितीय योजना प्रथम योजना से उन्नत होगी और प्रथम योजना में जो त्रुटियाँ

रह गई हैं, उनका इसमें निराकरण हो जायगा। प्रथम योजना में दूध तथा दूध से बनी वस्तुओं का प्रति व्यक्ति जो औसत लगाया गया था, वह ५.५ औंस प्रतिदिन था। यह औसत उस १५ औंस से कम था जो प्रतिदिन की सन्तुलित खुराक के लिए कम से कम बताया गया है। आगे चल कर कहा गया है कि हमारा लक्ष्य १० से १२ वर्ष में दूध के अच्छे क्षेत्रों में दूध की ३० से ४० प्रतिशत उन्नति करना है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सन् १९५६ में प्रति व्यक्ति ८ औंस दूध मिल सकेगा, जो सन्तुलित खुराक का आधा ही अंश होगा। हम अपनी आर्थिक शक्ति को दृढ़ करने के लिए तो कटिबद्ध हैं, किन्तु उतनी मिकदार में भी दूध की व्यवस्था के लिए तत्पर नहीं, जो हमारे शरीर के लिए आवश्यक है और जितने से लोग स्वस्थ रह सकते हैं।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शहरों में दूध की खपत करने के सम्बन्ध में ३६ योजनाएँ प्रस्तावित हैं, जिन पर १७ करोड़ रु० व्यय करने का अनुमान लगाया गया है। इनमें से १२ सहकारी मक्खन (क्रीम) कारखाने और ७ दुग्ध उद्योग शालाएँ होंगी। दुग्ध उद्योग शालाओं की स्थापना ग्रामीण क्षेत्रों में होगी और इनमें मक्खन, दूध तथा दूध का पाउडर तैयार किया जायगा। इसका अभिप्राय यह होगा कि अब बेचारे ग्रामीण दूध, दही, भट्टे से वंचित रह जायेंगे।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १२ करोड़ रु० मत्स्य उद्योग के लिए तथा ३ करोड़ रु० मुर्गी उद्योग के लिए रखे गये हैं। प्रस्ताव किया गया है कि अब ४ के स्थान पर २० अण्डे प्रति व्यक्ति मिलने लगेंगे, अर्थात् अण्डों में पाँच गुनी वृद्धि हो जायगी। किन्तु यह नहीं बताया गया है कि जिस उन्नति की १० या १२ वर्ष में आशा की जाती है वह द्वितीय पंचवर्षीय योजना की अवधि में कितनी पूरी हो जायगी।

अध्याय ६

ग्राम एवं लघु उद्योग

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में ग्राम एवं लघु उद्योग अपने विभिन्न रूपों में देश की आर्थिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय नियोजन दोनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण माने गये हैं। आशा की जाती है कि आगामी योजना काल में ये दोनों ही अंग महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे।

पहली बात तो यह है कि लघु उद्योगों के विकास से ऐसे बहुत से लोगों को रोजगार मिल जायगा, जो कम वेतन पर काम कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त ४५ लाख लोगों के लिए और जगह निकल आयेंगी।

दूसरी बात यह है कि इनके विकास से उपभोग की चीजें तैयार होंगी, जिससे लोगों की दिन-दिन बढ़ती हुई मांग पूरी हो जायगी और मुद्रा स्फीति रुक जायगी।

तीसरी बात यह है कि आवश्यक विकेन्द्रित समाज के ढाँचे के लिए तथा यथोचित तजी से प्रगतिशील आर्थिक विकास के लिए एक आधार मिल जायगा।

योजना के मसविदे में इस काम के लिए २०० करोड़ रु० रखे गये हैं। योजना के मसविदे में नवीन औद्योगिक नीति प्रस्ताव का भी हवाला दिया गया है। उसमें इस मत की पुष्टि की गई है कि यदि हम ग्राम तथा छोटे पैमाने के उद्योगों की सहायता करना चाहते हैं तो हमें बड़े पैमाने पर होने वाले उत्पादन की तादाद पर प्रतिबन्ध लगाने होंगे। इसके लिए या तो दोनों के करों में अन्तर करना होगा या फिर जहाँ आवश्यक हो, लघु उद्योगों को प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता देनी होगी। राज्य की नीति यही रहेगी कि विकेन्द्रित उद्योग पूर्णतया समर्थ एवं आत्मनिर्भर होकर बड़े उद्योगों के साथ-साथ पनपते रहें। अतः राज्य इन तरीकों पर ध्यान केन्द्रित करेगा, जिनके द्वारा छोटे पैमाने पर उत्पादन करने वालों की प्रतियोगिता शक्ति उन्नत हो सके।

इस नीति के सम्बन्ध में जो वक्तव्य दिया गया है, वह अत्यन्त सन्तोषजनक है। यदि इस पर ठीक से अमल हुआ तो लघु उद्योगों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा और इनकी स्थिति सुदृढ़ हो जायगी। किन्तु सरकारी मशीन जिस ढंग से चल रही है, इससे संशय है कि आशानुरूप फल प्राप्त न हो सकेंगे।

मई १९५५ में योजना आयोग ने प्रोफेसर कर्वे की अध्यक्षता में एक समिति बिठाई थी, जिसका उद्देश्य ग्राम तथा लघु उद्योगों के विकास के सम्बन्ध में विचार करना था। ये उद्योग द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अनिवार्य अंग हैं, अतः समिति का यह भी काम था कि वह प्रत्येक उद्योग के लिए ऐसी योजना बनाये, जिससे इन के लिए निर्धारित साधनों का सदुपयोग हो सके और इन उद्योगों का विकास हो जाय। कर्वे समिति की अनेक महत्वपूर्ण सिफारिशों में से एक यह है कि उसने केन्द्र में एक पृथक् मन्त्रालय की स्थापना की सलाह दी है, जिसके जिम्मे ग्राम तथा लघु उद्योग हों।

इस समय इन उद्योगों से सम्बद्ध ६ बोर्ड हैं, जिनमें से तीन विधानात्मक और ३ गैर-विधानात्मक हैं। इनमें से ३ उत्पादन मन्त्रालय के अधीन और ३ उद्योग तथा वाणिज्य मन्त्रालय के अधीन हैं। अतः कर्वे समिति ने सिफारिश की है कि कम से कम इन सबको एक मन्त्रालय के अधीन रखा जाय और इनकी देख-रेख के लिए एक सेक्रेटरी अलग से नियुक्त कर दिया जाय। कर्वे समिति ने इस सिफारिश के लिए अकाट्य तर्क दिये हैं। हमें देखना है इन उद्योगों के द्वारा अधिक से अधिक लोगों को किस प्रकार रोजगार दिया जा सकता है और ये उद्योग उपभोग की अधिक से अधिक आवश्यक वस्तुओं को किस प्रकार पूरा कर सकते हैं। हमें यह भी विचारना है कि औद्योगिक उत्पादन के लिए विकेन्द्रित क्षेत्र, जो प्राविधिक दृष्टि से बहतर हों और जो मजदूरों को अच्छी मजदूरी दे सकें, किस प्रकार स्थापित हों, जिससे वे देश की आर्थिक व्यवस्था में बहुमूल्य और आत्मनिर्भर हो सकें। ये बड़े महत्वपूर्ण और विचारपूर्ण प्रश्न हैं, जिनके लिए हमको स्पष्ट नीति, दत्त चित्त और विभिन्न स्तर पर जीतोड़ कार्य करने की आवश्यकता है। इनके लिए २०० करोड़ रु० निश्चित कर देना तथा विभिन्न कार्यक्रम बना देना ही सफलता के लिए प्रमाण नहीं हैं। न तो केन्द्रीय सरकार और न राज्य सरकारों के पास ही इस विशाल कार्य के सम्पादन के लिए पर्याप्त साधन हैं। अतः ग्राम तथा लघु उद्योगों के लिए केन्द्र में एक अधिकारी की आवश्यकता है। इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह

कर्वे समिति की सिफारिशों के अनुसार मन्त्रिमंडल के नीचे मन्त्रालय का ही स्वरूप अपनाये या किसी मन्त्रालय में एक स्वतन्त्र इकाई के रूप में कार्य करे। दुःख की बात है कि कर्वे समिति को रिपोर्ट दिये हुए भी बहुत दिन हो गये और योजना को बने भी बहुत समय बीत गया, किन्तु इस महत्वपूर्ण विषय पर अब तक कोई निश्चय नहीं हो पाया है, जो योजना का प्रमुख अंग है। वाणिज्य एवं उद्योग विभाग के तत्कालीन मन्त्री श्री टी० टी० कृष्णमचारी ने तो इस सिफारिश का खुला विरोध किया था। अब जब कि उन्होंने इस मन्त्रालय को छोड़ दिया है तो भी मन्त्रालय के कार्य का विभाजन कर्वे रिपोर्ट की सिफारिश को ध्यान में रखते हुए नहीं हुआ। सबसे रहस्यपूर्ण बात यह है कि उनके कुछ काम, विशेषकर तीन बोर्डों से सम्बद्धित काम, उत्पादन मन्त्री को क्यों नहीं सौंपे गये ? क्योंकि इस समय जिस मन्त्री को यह काम सौंपा गया है, उस से उत्पादन मन्त्री के पास काम हल्का है। अभी उस दिन की बात है कि उत्पादन मन्त्री ने राज्य परिषद् में कहा था कि वह कर्वे रिपोर्ट की सिफारिशों से सहमत हैं और अब प्रधान मन्त्री इस सम्बन्ध में विचार कर रहे हैं तथा यथासमय आवश्यक कदम उठाया जायगा। मैं नहीं जानता कि उनके वक्तव्य को क्या महत्व दिया जायगा; किन्तु कोई भी समस्या समय रहते ही सुलझाई जा सकती है।

एक मन्त्री की विलक्षणता के कारण पहले ही बहुत-सा अमूल्य समय नष्ट हो चुका है, यदि हम इसी प्रकार और भी समय नष्ट करते रहे, तो उपभोग की चीजों की कमी और बढ़ जायगी और उन मन्त्री महोदय की उस दलील के पक्ष में और बात मिल जायगी कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में जितनी तादाद में उपभोग की चीजें कुटीर तथा लघु उद्योगों के द्वारा पैदा होने की आशा की गई है, वह पूरी हो नहीं सकती, अतः हमें बड़े पैमाने के उद्योग द्वारा इन चीजों के उत्पादन की सम्भावना बढ़ानी चाहिए। इस सम्बन्ध में अर्थशास्त्री मण्डल ने योजना के मसविदे में जो चेतावनी दी है, उसका यहाँ उल्लेख कर देना अनुचित न होगा—“हम अन्त में जिस बात पर जोर देना चाहते हैं, वह यह है कि जब तक इस नीति के निर्णयों पर ठीक तरह से ध्यान नहीं दिया जायगा और उनके अनुसार तेजी से ठोस कदम नहीं उठाया जायगा, तब तक यह प्रस्तावित योजना न तो पूरे आकार में और न पूरे परिमाण में सफलतापूर्वक क्रियान्वित की जा सकेगी। क्योंकि इसके मार्ग में पग-पग पर बाधाएँ आती रहेंगी।” अतः इन उद्योगों का संचालन करने वाली एक अधिकृत नीति के सम्बन्ध में कहा गया है कि लघु उद्योगों के विकास के लिए भी केन्द्र में और उसके सहकारियों की राज्यों में नियुक्ति सम्बन्धी

नोति-निर्णय को लागू करने में विलम्ब के लिए जो जिम्मेदार हैं, उन्हें हम इन उद्योगों का हितैषी नहीं कह सकते ।

भारत सरकार ने अभी हाल में अपनी जिस कपड़ा उत्पादन नीति की घोषणा की है, उसका आचार्य विनोबा भावे तथा उन सभी समाज-सेवियों ने तीव्र विरोध किया है, जिन्होंने अपना जीवन ग्राम तथा लघु उद्योगों की उन्नति तथा विकास में लगा दिया है । सरकार की यह नीति भी लघु उद्योगों के विकास पर आघात पहुँचाने वाली है । यदि सरकार की यही नीति रही तो इन उद्योगों के विकास के लिए न तो अनुकूल वातावरण तैयार होगा और न योजना काल में आशानुरूप सफलता ही प्राप्त हो सकेगी ।

अम्बर चर्खे को लेकर मन्त्रिमण्डल के दो मन्त्रियों में जो अशोभनीय विवाद आरम्भ हो गया है, वह भी अत्यन्त खेदजनक है । यदि एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाय कि लम्बी अवधि में भी अम्बर चर्खे से उतना आर्थिक लाभ नहीं होगा, जितना कि इसके समर्थकों ने मान रखा है, तो भी मैं पूछना चाहता हूँ कि इसके आलोचकों ने इसके स्थान पर दूसरा क्या सुझाव रखा है ? यदि वे इन उद्योगों के सच्चे हितैषी हैं, जैसा कि वे दावा करते हैं, तो वे जापान के समान कुटीर और विकेन्द्रित आधार पर दूसरे उद्योगों की स्थापना पर विचार क्यों नहीं करते ? उदाहरण के लिए मैंने मार्च १९५५ में प्रधान मन्त्री को लिखा था कि यदि जापान सहकारिक तथा कुटीर उद्योगों के द्वारा साइकिल बना सकता है, तो हम भारत में क्यों नहीं बना सकते ? हमने इसे बड़े उद्योगपतियों के ही जिम्मे क्यों छोड़ रखा है, विशेष रूप से जब कि हमारे देश में साइकिलों की बिक्री कुछ कम नहीं, प्रति वर्ष पाँच लाख नहीं बल्कि पचास लाख से भी अधिक है । यदि हम जापान के समान इस उद्योग के विकास पर कुछ कड़ीड़ रुपये लगा दें, तो हम बहुत से व्यक्तियों को रोजगार दे सकेंगे और जनता के सस्ते यातायात के साधन की समस्या को भी हल कर देंगे ।

इसी तरीके से अनेक उद्योगों के सम्बन्ध में विचार कर उन्हें और विकसित किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में यह कह देना भी अनुचित न होगा कि बड़े उद्योग, चाहे वे निजी हों अथवा सार्वजनिक, उन सामाजिक बुराइयों से भरे रहते हैं, जो केन्द्रित उद्योग में अनिवार्यतः पाई जाती हैं । अतः महत्वपूर्ण प्रश्न यह है और जिसका नियोजकों को उत्तर देना है कि क्या वे पश्चिमी देशों के समान इन्हें अपनाना चाहते हैं या उन्हें यथासम्भव उसी प्रकार छोड़ना चाहते हैं, जिस प्रकार

गांधीजी से प्रेरणा पाकर उन्हें कांग्रेस ने छोड़ने का कहा था ? अतः मैं अनुरोध करता हूँ कि हमें आवश्यक और तेज कदम उठा कर केन्द्र में एक अधिकारी नियुक्त करना चाहिए, जो लघु उद्योगों के विकास के दृढ़ संगठन का प्रयत्न करे, जिससे देश को वह सफलता मिल जाय, जिसके लिए योजना का निर्माण किया गया है ।

“हमें कुछ दिन तक धैर्य से काम लेना होगा, क्योंकि ये लघु उद्योग कुछ समय तक मिलों से प्रतियोगिता न कर सकेंगे । योजना के मसविदे में उत्पादन के दोनों क्षेत्रों के लिए समान कार्यक्रम बनाया गया है । हमको दोनों प्रकार के उत्पादनों का समान मूल्य रखते हुए भी मिल के उत्पादन पर अनेक प्रतिबन्ध लगाने होंगे । इन प्रतिबन्धों का विरोध करने वाले यह भूल जाते हैं कि हमारे बड़े पैमाने के उद्योगों की वर्तमान दशा उपभोक्ताओं तथा करदाताओं के उस त्याग का फल है, जो उन पर सुरक्षा कर, महसूल, सहायतार्थ कर के रूप में लगाया गया था । इतना ही नहीं, लोगों ने देशभक्ति से प्रेरित होकर घटिया वस्तुओं के भी ऊँचे मूल्य दिये थे । लोगों ने ये जबर्दस्त त्याग इसलिए किये, जिससे देशी वस्तुएँ विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता कर सकें । हम अपने देशवासियों से कुछ वर्षों के लिए इसी प्रकार के त्याग के लिए कह सकते हैं, यह कोई ज्यादाती नहीं होगी, क्योंकि इससे बेकारों को और अधिक रोजगार मिलेगा, धन का उचित वितरण हो सकेगा और घरों में पारिवारिक जीवन सुरक्षित होगा ।

वास्तव में यह ‘मनुष्य बनाम मशीन’ का कोई सैद्धान्तिक प्रश्न नहीं है, यह प्रश्न है बेकार तथा निर्धारित वेतन दर से कम वेतन पाने वालों का राष्ट्रीय एवं मानवीय प्रश्न । बेकारी निश्चित रूप से बढ़ती जा रही है और यह बड़े पैमाने के उद्योगों से दूर नहीं की जा सकती ।

अध्याय १०

स्वास्थ्य

प्रथम योजना ने यह स्वीकार किया था कि राष्ट्र के किसी भी क्षेत्र की उन्नति के लिए अच्छे स्वास्थ्य की सर्व प्रथम आवश्यकता है। यदि हम देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से देखें तो देशवासियों के स्वास्थ्य से बढ़ कर देश का और कोई महत्वपूर्ण धन नहीं है। उद्योग तथा कृषि की उन्नति के लिए कर्मचारियों तथा श्रमजीवियों का अच्छा स्वास्थ्य परमावश्यक है। प्रथम योजना में यह भी कहा गया है कि मनुष्य की कुशलता अच्छे स्वास्थ्य पर ही निर्भर है, अच्छे स्वास्थ्य से ही उसका शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है तथा स्वास्थ्य के अच्छे होने पर ही वह अपने समृद्ध एवं पूर्ण जीवन का पूरा आनन्द उठाता है—हम नीरोग मनुष्य को ही स्वस्थ नहीं मान सकते हैं। फिर भी प्रथम योजना काल में इस दिशा में बहुत कम कार्य किया गया; द्वितीय योजना के मसविदे में तो इसका हवाला भी नहीं है।

स्वास्थ्य सम्बन्धी अध्याय में कहा गया है कि द्वितीय योजना काल में स्वास्थ्य केन्द्रों का विस्तार इस प्रकार किया जायगा, जिससे साधारण जनता भी उनसे लाभ उठाये और राष्ट्र के स्वास्थ्य की वृद्धि हो।

योजना में स्वास्थ्य के लिए ४३ करोड़ रु० रखा गया है। यह रुपया अस्पताली सेवा के विस्तार और उन्नति, कर्मचारियों, स्थान बढ़ाने, सामान तथा औषधियों पर व्यय किया जायगा। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के काल के अन्त तक अस्पतालों की संख्या लगभग १२,६०० और पलंगों की संख्या लगभग १,५५,००० हो जायगी, जबकि प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्त में लगभग १०,००० अस्पताल और १,२५,००० पलंग थे। द्वितीय योजना में अस्पतालों में २६ प्रतिशत और पलंगों में २४ प्रतिशत वृद्धि की गई है, जब कि प्रथम योजना काल में अस्पतालों में १६ प्रतिशत तथा पलंगों में १० प्रतिशत वृद्धि

हुई थी। योजना के मसविदे में बताया गया है कि इस समय देश में ७,००० योग्य डाक्टर हैं और आशा की जाती है कि योजना काल के अन्त तक १२,५०० और हो जायेंगे, जबकि देश को १०,००० डाक्टरों की आवश्यकता है। योजना में २ करोड़ ६० मैडीकल कौलेज और उनसे सम्बद्ध अस्पतालों के लिए रखे गये हैं। तब भी ४०० व्यक्तियों पर १ डाक्टर का अनुपात आयेगा। गाँवों में ८५ प्रतिशत लांग रहते हैं, और डाक्टर २५ प्रतिशत से भी कम रहते हैं। अतः गाँवों में डाक्टरों का अनुपात १२,००० पर १ डाक्टर भी नहीं बैठेगा। अस्पतालों का भी यही हाल है, क्योंकि अधिकांश अस्पताल शहरों में हैं और वे भी बड़े-बड़े शहरों में। ग्रामीणों के हिस्से में ५०,००० पर १ अस्पताल भी नहीं आता। स्वभावतः प्रश्न उठता है कि इस रफ्तार से हम कैसे इङ्ग्लैंड की तरह जन-स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधा के स्तर को प्राप्त कर सकेंगे और क्या कभी हमारे पास इतना वित्त होगा कि उसके अनुरूप अपना स्वास्थ्य विधेयक रख सके ? हमारे केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय को जन-स्वास्थ्य की रक्षा के लिए आधुनिक चिकित्सा प्रणाली पर बहुत भरोसा है, किन्तु यह प्रायः सभी लोगों की धारणा है कि इस प्रणाली से जो रोगों की रोक-थाम की जाती है, वह इतनी तेज पड़ती है कि भविष्य में उसके व्यय को न तो राज्य वहन कर सकेगा और न जनता सह सकेगी। जनता को विश्वास है कि यदि आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली पर पर्याप्त ध्यान देकर इनकी खोज, विकास तथा संगठन पर ध्यान दिया जाय और इन पर आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के वर्तमान व्यय का दशांश भी खर्च किया जाय, तो समस्या का हल आसान हो जायगा और अधिकाधिक लोग चिकित्सा लाभ कर सकेंगे। किन्तु इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो देशी चिकित्सा प्रणाली पर ढाई पेज लिखे गये थे और योजना के मसविदे में अच्छी-अच्छी सिफारिशों की गई थीं, किन्तु द्वितीय योजना में इस विषय को ११ पंक्तियों में यह कह कर टाल दिया गया है कि देशी चिकित्सा पद्धति पर केन्द्र १ करोड़ ६० तथा राज्य सरकारें ५.५ करोड़ ६० खर्च करेंगी। प्रथम योजना में जो महत्वपूर्ण सिफारिशों की गई थीं, उनके बारे में इसमें कुछ भी नहीं कहा गया है। उदाहरण के लिए इसमें सुझाव दिया गया था कि प्राकृतिक चिकित्सा के सम्बन्ध में इस प्रकार तुरन्त कदम उठाया जाना चाहिए—

- १—प्राकृतिक चिकित्सा को भी शोध कार्य में शामिल किया जाय और इसके ज्ञान को प्रमाणिक बनाया जाय।

२—इस विषय को 'ग्राल इण्डिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट' में किस हद तक शामिल किया जा सकता है, इसके विषय में खोज-बीन करनी चाहिए और शोध तथा अनुभव के आधार पर इसकी शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए ।

३—शोध तथा अनुभव से अनुमोदित प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए सुविधा दी जाय ।

हमारे प्रधान मन्त्री योग के आसनों के प्रचार पर बल देते हैं । वे अपने निजी अनुभव के आधार पर कहते हैं कि इन आसनों से बिना किसी व्यय के शरीर तथा मस्तिष्क स्वस्थ रह सकते हैं । योजना के मसविदे में ३७,००० रजिस्टर्ड और लगभग एक लाख अनरजिस्टर्ड वैद्य, हकीम तथा होम्योपैथ तथा अन्य चिकित्सकों की सेवाओं के उपयोग के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है । योजना के मसविदे में राष्ट्रीय विस्तार, सामुदायिक विकास एवं अन्य क्षेत्रों में ३,००० स्वास्थ्य इकाइयों की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है । यद्यपि द्वितीय योजना के मसविदे में इस विषय पर कुछ भी नहीं कहा गया है, किन्तु मुझे विश्वस्त सूत्र से बताया गया है कि देशी चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं किया जायगा ।

इस सम्बन्ध में योजना आयोग ने एक विशेष समिति बिठाई थी, जिसने भारतीय चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध में शोध, संगठन और विकास के बारे में सर्व सम्मति से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिफारिशें की थीं । किन्तु नियोजकों ने उन पर विचार तक नहीं किया ।

गत वर्ष योजना के मसविदे के प्रकाशित होते ही, मैंने देश की स्वास्थ्य समस्या के हल के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये थे । मुझे दुःख है कि उन पर कतई ध्यान नहीं दिया गया । यहाँ मैं उनमें से कुछ का उल्लेख किये देता हूँ, जिनसे पाठक यह निर्णय कर लें कि ये सुझाव देश की स्वास्थ्य समस्या के हल करने में कहाँ तक सहायक हो सकते हैं ।

“चूँकि इस बात को सभी स्वीकार करते हैं कि हमारे देश-वासियों का स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ है । बीमारियों का जोर बहुत ज्यादा रहता है, जिनसे सुदूरवर्ती गाँवों में बसे लाखों लोग ग्रस्त रहते हैं—इनके कारण देश का बहुत अधिक समय तथा शक्ति नष्ट हो रही है ।

हमारे स्वास्थ्य आयोजन को चिकित्सा की ऐसी योजना बनानी होगी, जिससे लाखों लोगों का हित हो, फिर वह पद्धति चाहे कोई भी हो। हमको पर्याप्त प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव से निराश न हो कर नये लोगों को उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण देना चाहिए और वर्तमान साधनों का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। आर्थिक तथा सामाजिक कारणों के अतिरिक्त जैसे बेरोजगारी, अस्वास्थ्यकर घर तथा निरक्षरता, जो स्वास्थ्य योजना के अन्तर्गत नहीं आते—मेरी समझ में मुख्य कारण यह हैं जिनका निराकरण स्वास्थ्य योजना को करना है:—

(अ) अज्ञान (ब) मिथ्याआहार (स) छूत की बीमारी (द) चिकित्सा की अपर्याप्त सुविधाएँ।

इन बुराइयों को दूर करने के लिए सबसे पहले मैं चाहूँगा कि बुद्धिमान जनता इस कार्य में स्वेच्छा से अपना सहयोग दे। मैं उससे आशा करूँगा कि पर्याप्त ज्ञान तथा जानकारी और रोगों की रोकथाम के साधनों के जुटाने का प्रयत्न करे तथा रोगों की प्रारम्भिक अवस्था में डाक्टर की सहायता के पहले उनका उपचार भी करे। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि इसके लिए हमें गांधीजी की पद्धति को अपनाना होगा। स्थानिक भाषा में चिकित्सा पथ-प्रदर्शक प्रकाशित करने तथा लोक गीतों के द्वारा प्रचार करने के अतिरिक्त प्रामाणिक दवाओं से भरा एक घरेलू बक्सा भी प्रत्येक गाँव में रख दिया जाय, जिसका उपयोग आवश्यकता के समय यदि बिना मूल्य सम्भव न हो, तो नाममात्र के मूल्य पर ग्रामवासी कर सकें।

अस्पतालों के सम्बन्ध में मैंने निम्न सुझाव दिये थे :—

“देश के वर्तमान औषधालयों की संख्या बिलकुल अपर्याप्त है और उनका प्रबन्ध भी अत्यन्त असन्तोषजनक है। योजना में स्वतः स्वीकार किया गया है कि गत वर्षों में यद्यपि चिकित्सालयों की संख्या बढ़ गई है, किन्तु उनके कार्य के स्तर और कार्य-कुशलता में बहुत कमी हो गई है। यह बड़े ही दुःख की बात है कि हमारे चिकित्सालयों में अष्टाचार प्रवेश कर गया है और मुझे विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि बहुत-सी औषधियाँ तथा अन्य अस्पताली सामान बाजारों में बेच

दिया जाता है। यह स्थिति बहुत ही असन्तोषजनक है और इसके सम्बन्ध में कठोर कार्रवाई करने की आवश्यकता है। मैं इस सम्बन्ध में केवल कुछ सुझाव दूँगा :—

(अ) जिन लोगों की आय एक निश्चित रकम से अधिक है, मान लिया जाय कि ६,००० रु० वार्षिक से अधिक है, उन लोगों को अस्पतालों में भर्ती नहीं करना चाहिए। उन लोगों के लिए ऐसे नर्सिंग होम की पृथक् स्थापना की जानी चाहिए, जो अपना खर्च उठाने में आत्मनिर्भर हों और तरजीह इस चीज को दी जाय कि उनकी व्यवस्था प्राइवेट डाक्टरों के हाथ में हो।

(ब) अस्पतालों में काम करने वाले डाक्टरों को निजी प्रैक्टिस करने की अनुमति न दी जाय।

(स) जिन व्यक्तियों की वार्षिक आय ३,००० रु० से अधिक है, उनसे औषधियों का मूल्य लिया जाय और इससे कम आय वालों की चिकित्सा निःशुल्क हो।

(द) जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि बड़े अस्पतालों से सम्बन्धित ग्रामीण क्षेत्र में सहायक अस्पताल स्थापित किये जायें। इन अस्पतालों के रोगियों को रोग-मुक्त होते ही १५ दिन के भीतर छुट्टी दे दी जाय।

जिस प्रकार कुछ समय से दिल्ली में सहकारी स्वास्थ्य केन्द्र हैं और सब रोगों के चिकित्सालय कार्य कर रहे हैं, उसी प्रकार के चिकित्सालयों का संगठन करना चाहिए। यह ध्यान रखा जाय कि इनका भार राज्य सरकारों पर किसी प्रकार भी न पड़े। इन चिकित्सालयों को सस्ते मूल्य पर आवश्यक सामग्री मिलती रहे। ऐसा करने से सरकारी अस्पतालों में भीड़ कम हो जायगी।

देश का कल्याण देशवासियों के अच्छे स्वास्थ्य पर ही निर्भर है, अतः स्वास्थ्य केन्द्रों का संगठन भलीभाँति होना चाहिए। इनमें वे आदमी रखे जायें, जो जनता की भलाई और समाज-सेवा की भावना से अनुप्राणित हों।

अन्त में, राज्य को ऐसे प्रयत्न करने चाहिए, जिनसे चिकित्सा व्यवसाय की विभिन्न शाखाओं में व्याप्त धन-लोलुप प्रवृत्ति और लूट-खसोट को खतम किया जा सके। चिकित्सा व्यवसायियों को समझाना चाहिए कि उन पर समाज का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, उनका कर्त्तव्य है कि वे अधिक से अधिक व्यक्तियों को अपने उपयोगी मशवरे और लाभदायक इलाज से समाज को लाभ उठाने का मौका दें।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि चिकित्सा व्यवसाय जन-सेवा का अत्यन्त पवित्र साधन बने । चिकित्सा व्यवसाय समाज का मित्र, दार्शनिक तथा पथ-प्रदर्शक उसी रूप में बन जाय, जैसा कि एक समय वह भारत की अर्थ-व्यवस्था में था ।

इसमें मुझे शक नहीं कि योजना के मसविदे में स्वास्थ्य सम्बन्धी जो कार्यक्रम बनाया गया है, उसका मनोयोगपूर्वक विवेचन करने से यही पता लगेगा कि स्वास्थ्य समस्या को हल करने की दिशा में वह हमें बहुत दूर तक नहीं ले जा सकता । जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हमें घिसे-पिटे तरीकों को छोड़ कर नया रास्ता निर्माण करना होगा, जो इस देश के अन्तर्गत हमारी शारीरिक, आर्थिक तथा सामाजिक अवस्थाओं के अनुकूल हों ।

अध्याय ११

गृह-निर्माण तथा सड़कें

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के मसविदे में मकानों के लिए १२० करोड़ रु० रखे गये हैं, जबकि प्रथम योजना में ३८.५ करोड़ रु० रखे गये थे। इनका वितरण इस प्रकार होगा :—

	रुपये (करोड़ों में)
सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास	४५
कम आय वाले लोगों के लिए आवास	४०
ग्रामीण आवास	१०
गन्दी वस्तियों के हटाने तथा सहृदयों के लिए आवास	२०
मध्यम आय वालों के लिए आवास	३
बागान आवास	२
	१२०

ऊपर के विवरण में गृह-निर्माण के वे कार्यक्रम सम्मिलित नहीं हैं, जिन्हें पुनर्वास, रक्षा, रेल, लौह तथा फौलाद उत्पादन, संचार तथा राज्य सरकारों तथा स्थानीय सार्वजनिक अधिकारियों ने अपने हाथ में ले रखा है।

अनुमान है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में १३ लाख मकान बनवाये गये थे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में १६ लाख मकान बनाये जाने का अनुमान है, जिनमें से ८ लाख मकान निजी क्षेत्र के होंगे। किन्तु अकेले शहरी क्षेत्र में ८०-९० लाख मकानों की कमी है। योजना के मसविदे में बताया गया है कि द्वितीय योजना काल में शहरी क्षेत्र में कम से कम ३० लाख मकान बनवाने चाहिए, क्योंकि युद्ध, विभाजन तथा अन्य कारणों से शहरी क्षेत्र में मकानों की बहुत कमी हो गई है।

यह सभी स्वीकार करते हैं कि उपयुक्त मकान की व्यवस्था मनुष्य की मौलिक आवश्यकता है। उपयुक्त मकान के न होने पर रोग फैलते हैं और मनुष्यों में असन्तोष बढ़ता है। इससे मानवता का ह्रास होता है और उत्तम गुण नष्ट हो जाते हैं। अतः देशवासियों के लिए मकान की व्यवस्था राज्य का एक महत्वपूर्ण कार्य हो जाता है। किन्तु योजना के मसविदे में भवन-निर्माण की जो व्यवस्था की गई है, वह पूर्णतः अपर्याप्त है। बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में हमारी मकान समस्या और भी जटिल हो जायगी।

हमारी योजना के मसविदे में मकानों के लिए केवल धन ही कम नहीं रखा गया अपितु इस समस्या का कुछ मूल्यांकन भी नहीं किया गया है। इस योजना में यह भी नहीं बताया गया है कि इस समस्या का कब तक और किस तरीके से सन्तोषजनक हल निकल सकेगा।

जिन लोगों ने मकानों की समस्या का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया है, उन्होंने इसके हल ढूँढने पर पूरा जोर दिया है। किन्तु आश्चर्य की बात है कि योजना के मसविदे में गृह-निर्माण नीति का कोई उल्लेख नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ के एक शिष्ट मण्डल द्वारा गर्म देशों में आवास विषयक रिपोर्ट जनवरी ११५१ में प्रकाशित हुई थी, उसका एक उद्धरण देना मैं पर्याप्त समझता हूँ :—

“अतएव हम इस बात का अनुरोध करते हैं कि मकान अथवा बड़े पैमाने पर सामूहिक मकान निर्माण करने के पूर्व एक दृढ़ नीति एवं निश्चित कार्यक्रम बना लिया जाय। वास्तविकता यह है कि अभी तक किसी ने इस समस्या पर पूर्णतया विचार नहीं किया है, और इसी कारण इन देशों को इस ओर सफलता नहीं मिली है।”

प्रथम पंचवर्षीय योजना में भी इसके महत्व को स्वीकार किया गया है, किन्तु न तो योजना आयोग ने और न केन्द्रीय गृह-निर्माण मन्त्रालय ने इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। योजना आयोग के गृह-निर्माण मण्डल (हाउसिंग पैनल) ने इस प्रश्न को अपनी एक उपसमिति को सौंप दिया था। किन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि इस उपसमिति की रिपोर्ट पर भी न तो मण्डल ने और न योजना आयोग ने विचार किया। यह ठीक है कि योजना के मसविदे में उन असंख्य स्त्री-पुरुषों की सम्मतियों का हवाला दिया गया है जिनका ध्यान योजना बनाते समय रखा गया है। किन्तु मैं अपने निजी अनुभव से यह

कह सकता हूँ कि योजना आयोग ने उसकी सम्मति की भी उपेक्षा की है जिसका उसने स्वयं निर्माण किया था। यद्यपि योजना मन्त्री ने इस पर विचार करने का बार-बार आश्वासन दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के सुदूर भागों के बहुत से व्यक्तियों का समय और परिश्रम व्यर्थ गया तथा करदाताओं के धन का अनावश्यक अपव्यय हुआ।

गृह-निर्माण नीति के बाद अब इस समस्या का हल करने के लिए किसी देशव्यापी सतर्क संगठन के स्थापन की समस्या है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो गृह-निर्माण योजना के किसी बड़े पैमाने के कार्यक्रम को अमल में लाने में असमर्थ रहेंगे। इसका अनुभव हमें प्रथम योजना काल में हो गया था। प्रथम योजना में ऐसे कानून सम्मत गृह-निर्माण बोर्डों की स्थापना का विचार किया गया था, जिन्हें ऋण देने का पूरा अधिकार हो और मकान बनाने वाला इस स्वीकृत धन को बैंक अथवा बीमा कम्पनियों से ले कर अपना मकान बनवा ले। जुलाई १९५५ में गृह-निर्माण मन्त्रियों का एक सम्मेलन शिमला में हुआ था। इस सम्मेलन ने भी राज्यों में ऐसे धनदाता गृह-निर्माण निगमों (हाउसिंग फाइनेन्स कौरपोरेशन्स) की स्थापना की सिफारिश की थी, जो गृह-निर्माण कार्य को बड़े पैमाने पर सारे देश में बढ़ावा देने का जोरदार प्रयत्न करें। अधिकांश सभी पश्चिमी देशों में राज्य गृह-निर्माण समितियाँ (स्टेट हाउसिंग बोर्ड्स) तथा गृह-निर्माण धनदायी संस्थाएँ (हाउसिंग फाइनेन्स इन्स्टीट्यूशन्स) हैं, जो बड़ी तत्परता और दक्षता से मकानों की समस्या को हल करने का कार्य करती हैं। प्रथम योजना काल में इस दिशा में किसी प्रकार का भी प्रयत्न नहीं हुआ और योजना के मसविदे में तो इस बात का जिक्र तक नहीं किया गया। योजना के मसविदे में इस समस्या के एक अन्य महत्वपूर्ण अंग पर भी विचार नहीं किया गया और वह है मकानों के लिए भूमि की समस्या। राज्य की भूमि सम्बन्धी दो नीतियाँ परस्पर विरोधी प्रतीत होती हैं। अर्थात् उसकी खेतिहर भूमि के सम्बन्ध में लगान व्यवस्था तो बहुत समय से समाजवादी रही है और गृह-निर्माण के लिए भूमि देने की व्यवस्था पूँजीवादी रही है। मकानों के प्लॉट बड़ी ऊँची दर पर बेचे जाते हैं और इस काम के लिए इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट तथा सरकार किसी पूँजीपति के समान ही दोषी ठहराये जा सकते हैं। सरकार ने फाटकेबाजी की प्रवृत्ति को छोड़ कर अभी तक अपने लाभ को नियमित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया है। दूसरे देशों के समान सरकार ने अभी तक ऐसा कोई कानून नहीं बनाया है, जिससे मकानों के प्लॉट और टूटे मकान बिना बने न पड़े रहे और न उनकी कोई सीमा ही रखी है कि किसी के पास

इतने से अधिक मकान न हों। योजना के मसविदे से ग्रामीण कृषि भूमि की सीमा बांधने का तो विचार किया गया है किन्तु शहरी क्षेत्र में, जहाँ भूमि की बहुत कमी है, ऐसी सीमा निर्धारित करने का कोई विचार नहीं है।

कहा जाता है कि दिल्ली तथा दूसरे स्थानों में कौलोनी बसाने वालों ने अनाप-शनाप मुनाफे कमाये हैं, किन्तु नियोजकों ने जनता की इस समस्या पर विचार तक नहीं किया कि मकान बनाने वालों को शीघ्र ही भूमि मिल जाय और वे जल्दी ही मकान बना लें। मकानों की समस्या को ठीक तरह समझने तथा उसे उचित रीति से सुलभाने में हमारे नियोजक अत्यन्त असफल रहे और इस विचार से योजना अत्यन्त उथली, असन्तोषजनक तथा निराशाजनक रही।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, द्वितीय योजना में मकानों के लिए धन नाकाफी है। इनके लिए और अधिक धन रखना सम्भव था और रखना भी चाहिए था। इस समस्या का हल राष्ट्रीय महत्व रखता है, साथ ही द्वितीय योजना में अन्य कारणों से भी इसका महत्व है, जैसे बेकारी को दूर करना, आर्थिक साधनों को गतिमान बनाना, उत्पादन को बढ़ाना, रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करना तथा जनता का नैतिक तथा भौतिक कल्याण करना।

योजना में मकानों के लिए तो थोड़ा धन रखा गया है, किन्तु उसके वितरण के सम्बन्ध में नियोजकों ने न तो विभिन्न श्रेणियों के लोगों की आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखा है और न उन समाजवादी सिद्धान्तों पर ही ध्यान दिया है, जिनके आधार पर समाज के ढाँचे का निर्माण किया जायेगा। उदाहरण के लिए नियोजकों ने ग्रामीण क्षेत्र की आवास समस्या के सम्बन्ध में मसविदे में कहा है कि ग्रामीण क्षेत्र में मकानों की हालत सुधारना बड़ा विशालकाय कार्य है। ग्रामीण क्षेत्र में ५ करोड़ ४० लाख मकानों का या तो जीर्णोद्धार करना है या उन्हें पूरी तरह से ठीक करना है और योजना में इस बड़े काम के लिए केवल १० करोड़ रु० ही रखे गये हैं। प्रथम योजना काल में सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत कुछ हजार मकान या तो बनवाये गये थे या कुछ का जीर्णोद्धार किया गया था, किन्तु यह प्रयत्न सेर में पौनी कातने के समान ही था। यह आशा की गई थी कि द्वितीय योजना में ग्रामीण मकानों के सुधार पर विशेष जोर दिया जायगा, क्योंकि उनकी दशा शहरी मकानों की अपेक्षा अधिक खराब है। गाँवों में ८५ प्रतिशत जनता रहती है, किन्तु अनेक शताब्दियों से गाँवों की उपेक्षा होती रही है। कस्बों और शहरों की बड़ी-बड़ी इमारतें

उन्हीं के बल पर बनती हैं। उनके सभी व्यावसायिक गुण तथा कौशल नष्ट कर दिये गये हैं, अतः राज्य को उनकी दशा सुधारने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए। मैं अपने पहले लेख में बता चुका हूँ कि गाँवों की दुर्दशा का अन्त होने पर ही भारत की उन्नति हो सकेगी। ५ लाख गाँवों की दशा को सुधारे बिना भारत का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता, क्योंकि वे धूल, मिट्टी, बीमारी, गन्दगी के केन्द्र बन गये हैं। गुफा के समान उनके कच्चे मकान बीमारी के अड्डे हैं, यहाँ पर न नालियाँ हैं और न पर्याप्त पानी। इन्हीं मकानों में ये बेचारे अपने पशुओं के साथ सदा से रहते चले आये हैं।

ग्रामीण मकानों के लिए इतना थोड़ा रुपया रखना—जबकि ६००० रु० तक की आय वालों के लिए ४० करोड़ रु० और इससे अधिक आय वालों के लिए ३ करोड़ रु० रखे गये हैं—जले पर नमक छिड़कने के समान ही है। समाजवादी ढंग के समाज का उद्देश्य अपना लेने के बाद भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि राज्य आवश्यकता का ख्याल न कर आय के अनुसार सहायता देता है। मैं तो फिर भी यही सुभाव दूँगा कि धन का विभाजन इस प्रकार करना चाहिए जिससे छोटी श्रेणी के उन अधिक से अधिक लोगों को मकानों के लिए आर्थिक सहायता दी जाय, जो उनमें स्वयं धन नहीं लगा सकते हैं। धन की कमी को देखते हुए मैंने तो सुभाव दिया था कि द्वितीय योजना काल में उन सभी परिवारों को अच्छे प्लॉट दे दिये जायें, जिनके पास घर के मकान नहीं हैं। प्लॉट के मिल जाने पर लोगों में मकान बनवाने के लिए बहुत उत्साह पैदा हो जाता है। इस सम्बन्ध में मैंने और भी सुभाव दिये थे, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नियोजकों ने उन पर ध्यान ही नहीं दिया है। अब यहाँ उन्हें दुहराना उचित नहीं समझता।

सड़कें—युद्धोत्तर काल में सड़कों की उन्नति करने के लिए एक योजना बनी थी, जो 'नागपुर योजना' नाम से प्रसिद्ध है। इसमें १० वर्ष के अन्दर ६६,१०० से १,२२,००० मील तक की पक्की सड़कें, १,१२,००० से २,०७,५०० तक की छोटी सड़कें बनाने का तथा वर्तमान सड़कों की मरम्मत करने का निश्चय किया गया था, जिससे २० वर्ष तक बढ़ते हुए यातायात के लिए सड़कों की कमी न रहे। 'नागपुर योजना' का उद्देश्य यह था कि कोई भी गाँव मुख्य सड़क से ५ मील से अधिक की दूरी पर न रहे। अब यातायात की आवश्यकताएँ सन् १९४३ के अनुमान से बहुत अधिक बढ़ गई हैं और 'नागपुर योजना' के लक्ष्य अब और अधिक बढ़ गये हैं। बड़े दुःख की बात है कि 'नागपुर योजना' की १० वर्ष की निश्चित अवधि के बीत जाने पर भी

उस लक्ष्य का अभी तक पूरा नहीं किया जा सका । प्रथम योजना काल में १,००० मील लम्बी नई बड़ी सड़कें और लगभग २०,००० मील लम्बी छोटी सड़कें बनीं और लगभग १०,००० लम्बी वर्तमान सड़कों का सुधार किया गया ।

द्वितीय योजना में केन्द्र तथा राज्य की योजनाओं में सड़कों की उन्नति के लिए २४६ करोड़ रु० रखा गया है, इसमें केन्द्रीय सड़क निधि से २५ करोड़ रु० और दिया जायगा । नियोजकों ने व्यौरेवार जाँच-पड़ताल किये बिना ही यह अनुमान लगा लिया है कि इतना धन लगा देने पर १९६०-६१ तक उतनी मील लम्बी सड़कें बन जायेंगी, जितनी कि 'नागपुर योजना' में निश्चित की गई थीं । इसका अभिप्राय यह हुआ कि द्वितीय योजना काल में १५,००० मील लम्बी पक्की सड़कें और ४७,००० मील लम्बी छोटी सड़कें बनाई जायेंगी । प्रथम योजना काल की प्रगति को देखते हुए तो इतने काम के पूरा होने में सन्देह है । यदि ये अनुमान पूरे हो भी जायें, तो भी लाखों गाँव ऐसे हैं, जहाँ बैलगाड़ी ही यातायात का साधन है । मैंने तथा अन्य सज्जनों ने सुझाव दिया था, किन्तु यातायात के इस साधन की उन्नति के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई है । यद्यपि देखा जाय तो इस साधन के द्वारा जितना माल ढोया जाता है, उतना और साधनों को मिला कर भी नहीं ढोया जाता । गाँवों से बाजारों तक बैलगाड़ियों के द्वारा ही नियमित रूप से माल जाता है । इसमें सुधार कर हम याता-यात की अधिक सुविधाएँ ही नहीं देगे, अपितु अधिक लोगों को रोजगार भी दे सकेंगे ।

अध्याय १२

शिक्षा

योजना के मसविदे में यह ठीक ही कहा गया है कि आर्थिक प्रागति जिस तेजी से की जा सकती है और उससे जो लाभ उठाये जा सकते हैं, उनको निश्चित करने में शिक्षापद्धति का विशेष महत्व होता है। यह भी स्वीकार किया गया है कि समाजवादी ढाँचे के समाज में ही लोग सभी कार्यों में और विभिन्न स्तर पर रचनात्मक नेतृत्व में हाथ बटा सकते हैं। मसविदे में संविधान के इस आदेश का हवाला दिया गया है कि राज्य संविधान के लागू होने के १० वर्ष के अन्दर अर्थात् २६ जनवरी १९६० तक १४ वर्ष तक के सभी बच्चों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करेगा। तिस पर भी योजना में शिक्षा के लिए पर्याप्त धन नहीं रखा गया है। नियोजकों ने स्वीकार किया है कि अत्यधिक विकास के काल में शिक्षा के लिए साधनों को लगा देना और निर्धारित लक्ष्यों को भी पूरा करना कठिन सवाल है, जिनका सामना हमें आर्थिक और सामाजिक विकास की योजनाएँ बनाते समय करना पड़ता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि बुनियादी और भारी उद्योगों के विकास की योजना पर इतना अधिक ध्यान है कि शिक्षा की आवश्यकताओं को बलि-वेदी पर चढ़ा दिया गया है। लेकिन शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों के हितार्थ स्वीकृत धन-राशि का जिस प्रकार वितरण किया गया है, उसी से आँखें खुल जाती हैं और पता लग जाता है कि संविधान के उक्त आदेश को नियोजक कितना महत्व देते हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा की उन्नति के लिए लगभग १६६ करोड़ रु० रखा गया था। इसमें से ४४ करोड़ रु० केन्द्र ने दिया था और १२५ करोड़ रु० राज्यों ने। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के लिए ३६७ करोड़ रु० रखे गये हैं। इसमें से ६५ करोड़ रु० केन्द्र देगा और २१२ करोड़ रु० राज्य। प्रथम तथा द्वितीय योजना में शिक्षा के विभिन्न विभागों के लिए इस प्रकार धन का वितरण किया गया है—

	प्रथम योजना	द्वितीय योजना (रुपया करोड़ों में)
प्रारम्भिक शिक्षा	६३	८६
माध्यमिक शिक्षा	२२	५१
विश्वविद्यालय शिक्षा	१५	५७
औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा	२३	४८
समाज शिक्षा	५	५
प्रशासन तथा विविध	११	५७
कुल योग	<u>१६९</u>	<u>३०७</u>

योजना के मसविदे में बताया गया है कि ६-१४ वर्ष तक की आयु के स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या का अनुपात प्रथम योजना काल में ३२ प्रतिशत से ४० प्रतिशत हो गया है और आशा है कि द्वितीय योजना काल में यह बढ़ कर ४६ प्रतिशत हो जायगा। इतनी वृद्धि होने पर भी संविधान के आदेश के अनुसार ५१ प्रतिशत की कमी रहेगी। द्वितीय योजना में शिक्षा की मद में ८० प्रतिशत की वृद्धि की गई है, किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ६३ करोड़ रु० रखा गया था, जबकि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में केवल ८६ करोड़ रु० ही रखा गया है। माध्यमिक शिक्षा पर लगभग १३३ प्रतिशत वृद्धि की गई है और विश्व विद्यालयी शिक्षा पर ३०० प्रतिशत। प्रारम्भिक शिक्षा में से ४ करोड़ रु० घटा दिया गया है और तारीफ यह है कि इसका कोई कारण भी नहीं बताया गया। योजना में इस महत्वपूर्ण विषय को यही कह कर टाल दिया गया है कि विधान का लक्ष्य सारे देश को निःशुक्ल अनिवार्य शिक्षा देना जरूर है, किन्तु इसके पूरा होने में अभी बहुत समय लगेगा। यह अवश्य कहा गया है कि विधान के आदेश को १० अथवा १५ वर्ष में पूरा करने के लिए यथासम्भव सभी प्रयत्न किये जायेंगे। इस वितरण में सबसे शोचनीय बात यह है कि 'प्रशासन तथा विविध' शीर्षक मद में ४२० प्रतिशत की वृद्धि कर दी गई है अर्थात् प्रथम योजना के ११ करोड़ रु० से बढ़ाकर ५७ करोड़ रु० कर दिये हैं। प्रथम योजना में इसका व्यय ६.६६ प्रतिशत था, यह बढ़ कर करीब १६ प्रतिशत हो गया है। योजना में शिक्षा को कम प्राथमिकता दी गई, इसके सम्बन्ध में कोई तथ्य हो सकता है, किन्तु यह मान कर भी कि बहुत कम धन स्वीकृत किया गया है, फिर भी प्रशासनिक व्यय तथा विविध

व्यय में इतना अधिक हिस्सा रख देना अशोभनीय ही कहा जायेगा । संविधान में जो स्पष्ट निर्देश किया गया है, उसका उद्देश्य यही था कि भारत की स्वतन्त्रता के बाद जिन बालकों का जन्म हुआ है, उन्हें कम से कम प्राथमिक शिक्षा के लाभ की गारण्टी दी जाय, किन्तु नियोजक केवल यही कह कर छूट जाते हैं कि यह तो सुदूर लक्ष्य है । जनता कारण जानना चाहती है । आखिर क्या इस विलम्ब का कारण धन की कमी है अथवा अध्यापक और अध्यापिकाओं की कमी । यदि धन की कमी है तो उसका तो सीधा-साधा उत्तर यही है कि नियोजकों को प्रारम्भिक शिक्षा के लिए कम से कम १५० करोड़ रु० रखना चाहिए था । अच्छा तो यह होता कि वे विश्वविद्यालयी शिक्षा प्रसार के लिए ७ नये विश्वविद्यालयों की स्थापना का विचार छोड़ देते, क्योंकि प्रथम योजना काल में ५ नये विश्वविद्यालय तो स्थापित हो ही चुके हैं । यदि विश्व-विद्यालयों पर इतना धन रख भी दिया तो कम से कम प्रशासन पर तो धन का इतना अधिक दुरुपयोग न करते । यह कहना तो बिलकुल ही युक्तियुक्त न होगा कि देश में अध्यापक अथवा अध्यापिकाओं की कमी है, क्योंकि हमारे देश में शिक्षित बेकारों की संख्या बहुत अधिक है और उनको प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार में सरलता से लगाया जा सकता है । कुछ भी हो, हमें संविधान के सिद्धान्तों और निर्देशों का पालन तो करना ही चाहिए और अशिक्षा को दूर कर देश के होनहार बालकों को कम से कम प्रारम्भिक शिक्षा की गारण्टी तो देनी ही चाहिए । यदि हम ऐसा न कर सके, तो फिर समाज की अधिकांश जनता के लिए स्वतन्त्रता, कल्याणकारी राज्य और समाजवादी व्यवस्था सब बेमानी हैं । देश को इस निरक्षरता का जो प्रायश्चित्त करना पड़ेगा उसके दोषी हम ठहराये जायेंगे, क्योंकि हमने ऐसी प्रतिज्ञाएँ कीं जिन्हें हम पूरा नहीं कर सके । प्रारम्भिक शिक्षा को देखते हुए हमारी योजना अत्यन्त ही निराशापूर्ण और असन्तोषजनक है एवं इससे जनता में किसी प्रकार के उत्साह का संचार नहीं होता ।

अध्याय १३

निष्कर्ष

जहाँ तक अन्न के उत्पादन का प्रश्न है, योजना के मसविदे में केवल १५ प्रतिशत की उन्नति की ही गुंजाइश रखी गई है। किन्तु राष्ट्रीय विकास परिषद् को अनेक धन्यवाद हैं कि उसने अन्न के उत्पादन में ४० प्रतिशत की वृद्धि तथा मूल्य में २० प्रतिशत की कमी करने का निश्चय किया है। हमारे प्रधान मन्त्री द्वारा परिषद् के इस निर्णय का हार्दिक स्वागत करने पर भी उनके विदेश भ्रमण के समय योजना मन्त्री तथा खाद्य एवं कृषि मन्त्री में इस विषय पर खुल कर मतभेद पैदा हो गया। राज्य कृषि मन्त्रियों ने केन्द्रिय कृषि मन्त्री के पक्ष का ही समर्थन किया। कहा जाता है कि प्रधान मन्त्री ने परिषद् के निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए राज्य के मुख्य मन्त्रियों को जोरदार शब्दों में एक पत्र लिखा था। मैं अपने पूर्व लेख में इस विषय पर विचार प्रकट कर चुका हूँ। परिषद् के इस महत्वपूर्ण निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए मैंने कुछ ठोस सुझाव रखे हैं, जिन्हें यहाँ दुहराना उचित नहीं समझता। इस सम्बन्ध में इतना ही, कह देना चाहता हूँ कि जब तक खाद्य पदार्थों का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में नहीं बढ़ जाता और उनका मूल्य नहीं घट जाता, तब तक योजना के अन्य अंगों की सफलता बड़े खतरे में ही रहेगी। इस समय खाद्य पदार्थों, वस्त्र इत्यादि के मूल्यों में जो वृद्धि हुई है उससे सर्व साधारण में जबरदस्त असन्तोष फैल रहा है।

मूल्यों का बढ़ना कोई आकस्मिक घटना नहीं है। इससे कोई मतलब सिद्ध नहीं होता कि एक केन्द्रिय मन्त्रालय कहे कि घाटे के राजस्व के कारण यह महँगाई बढ़ रही है और दूसरा मन्त्रालय कहे कि नाजचोरी के कारण मूल्य चढ़ रहे हैं। प्रश्न यह है कि समय पर कड़े कदम उठा कर इनकी पहले से ही रोक-थाम क्यों नहीं कर दी गई। इससे भी बड़ा सवाल यह है कि इन दिन-दिन

बढ़ते हुए भावों पर काबू पाना भी क्या सम्भव हो सकेगा ? इन बढ़ते हुए भावों के चक्कर ने उथल-पुथल कर दी है और जैसा कि योजना आयोग के एक सदस्य तथा अन्य विशेषज्ञों का अनुमान है कि यदि मूल्य इसी प्रकार बढ़ते रहे तो योजना के अनुमानों में गड़बड़ी हो जाने की सम्भावना है ।

पहले कहा जा चुका है कि इस योजना में प्रतिपादित शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, मकान, बागबानी और पशुपालन सम्बन्धी लाभों से जनता के अधिकांश भाग को और विशेषकर ग्रामीणों को कोई विशेष फायदा नहीं पहुँचेगा । तब सवाल उठता है कि फिर इस योजना से उनके उत्साहित होने और इसे कियान्वित करने में अपना सहयोग और समर्थन देने की कैसे आशा की जा सकती है, जब इसका खर्च पूरा करने के लिए चीजों के अधिक दाम और अधिकाधिक टैक्स ऊपर से देने पड़ेंगे । जनतन्त्रवादी व्यवस्था में आर्थिक योजना को कियान्वित करने के लिए जन-सहयोग आवश्यक शर्त है । योजना और समाजवाद एक ही लक्ष्य के दो साधन हैं, दोनों का उद्देश्य अधिकाधिक जनता का भौतिक तथा नैतिक कल्याण करना है । प्रायः सभी लोगों ने इसे माना है कि प्रथम योजना में गरीब अधिक गरीब तथा धनी और अधिक धनी हो गये हैं, किन्तु फिर भी द्वितीय योजना में इस आर्थिक विषमता के दूर करने का कोई तरीका नहीं निकाला गया है । योजना के इस मसविदे में निजी आय की सीमा निर्धारित करने के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया गया है किन्तु उसे लागू नहीं किया जायगा । इस कार्य के न करने के सम्बन्ध में वही घिसी-पिटी बात दुहराई गई है कि ऐसा करने से लोगों में काम करने के लिए उत्साह नहीं रह जायगा । पर क्या यह समाजवादी समाज के ढाँचे के अनुकूल है, जो हम इसकी दुहाई देते हैं । आज एक ओर तो मुट्ठी भर आदमी बेरोक तिजोरियाँ भरते चले जायें और दूसरी ओर काम करने के इच्छुक लाखों आदमियों को रोजगार भी न मिले ! कैसे आश्चर्य की बात है कि किसानों की जोत की सीमा तो निश्चित कर दी जाय, किन्तु आय की सीमा निश्चित न की जाय !

जहाँ तक योजना के परिमाण का सम्बन्ध है, मैं उससे व्यावहारिक रूप से सहमत हूँ । किन्तु मुझे उसके साधनों तथा धन के वितरण के सम्बन्ध में अवश्य शकाएँ हैं । मेरे कुछ सन्देह तो ठीक भी निकले हैं ।

गत कुछ ही मासों में वस्तुओं के मूल्य तो तेजी से बढ़े ही हैं, साथ ही हमारी विदेशी मुद्रा में भी अत्यधिक गिरावट आ गई है ।

गत वित्तीय वर्ष के अन्त तक हमारी विदेशी मुद्रा ७४६ करोड़ रु० थी, किन्तु जुलाई में वह ६५६ करोड़ रु० ही रह गई है।

विदेशी मुद्रा का इतना तेजी से गिरना एक अभूतपूर्व बात है। किन्तु इससे भी अधिक चिन्ताजनक बात यह है कि भारत को अपनी वित्तीय स्थिति को मजबूत रखने के लिए कम से कम ४०० करोड़ रु० की करेंसी रिजर्व विदेशी मुद्रा के रूप में रखनी ही चाहिए। विदेशी मुद्रा में इतनी तेजी से गिरावट आने का मुख्य कारण यह है कि योजना को क्रियान्वित करने के लिए हमें अत्यधिक आयात करना पड़ा है और इसकी तुलना में निर्यात बहुत कम हुआ है। अब प्रश्न उठता है कि क्या हमारे आयात कम नहीं किये जा सकते? उदाहरण के लिए हमें योजना की बड़ी माँग को पूरा करने के लिए बड़ी तादाद में विदेशों से अधिक ऊँची दर पर सीमेण्ट तथा फौलाद मँगाना पड़ा है। एक बहुत बड़े तवके का मत है कि अनेक विकास योजनाओं में इन वस्तुओं का इस्तेमाल जरूरत से ज्यादा हुआ है। इतना ही नहीं, अनेक इंजीनियर विशेषज्ञ तथा अन्य व्यक्ति अनुभव करते हैं कि इन बाँधों के निर्माण में पत्थरों का उपयोग करना चाहिए था, जैसा कि तुंगभद्रा बाँध के निर्माण में किया गया। सीमेण्ट के उपयोग के समर्थन में यह तर्क दिया जाता है कि सीमेण्ट का उपयोग अनिवार्यतः करना पड़ा था, क्योंकि कुछ बाँध तुङ्गभद्रा से भी ऊँचे थे। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जहाँ तक पत्थर का उपयोग करना सम्भव था, वहाँ तक तो करना ही चाहिए था। इसमें सन्देह नहीं कि सीमेण्ट के उपयोग से समय में अवश्य बचत हो जाती है, किन्तु जितनी समय की बचत होती है, उससे अधिक हानि अत्यधिक भ्रष्टाचार, अपव्यय और अतिव्यय के द्वारा होती है; साथ ही इसके लिए हमें विदेशी विनिमय की भी बड़ी जरूरत होती है। दूसरी ओर पत्थर के उपयोग से एक बड़ा लाभ यह होगा कि बहुत से लोगों को काम मिल जायगा, जो इस योजना का एक प्रमुख उद्देश्य है।

एक बात और, हमारी योजना में उन चीजों के विकास पर जोर दिया गया है, जिन्हें हम बुनियादी या भारी उद्योग कह सकते हैं और जिनके लिए हमें विदेशों से बहुत अधिक मशीन तथा सामान मँगाना पड़ता है। मैं बुनियादी उद्योगों की स्थापना का तो विरोधी नहीं हूँ, किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमें इतने बड़े पैमाने पर उद्योग को एक साथ हाथ में लेना उचित होगा?

उदाहरणार्थ, योजना काल में ४२५ करोड़ रु० की लागत से ३ फौलादी कारखानों के खोलने का प्रस्ताव किया गया है। वित्त मन्त्री के

अनुमान से इसमें ५० करोड़ रु० की वृद्धि और हो सकती है। उत्पादन मन्त्री के कथनानुसार बकारो में चौथे कारखाने के खोलने का विचार हो रहा है। बड़ी-बड़ी बातें सोचना और उन्हें क्रियान्वित करना तो बड़ी अच्छी बात है, किन्तु अपनी धन-जन शक्ति तथा साधन शक्ति का विचार किये बिना ही उन सब को एक साथ हाथ में ले लेना बुद्धिमत्ता-पूर्ण न होगा। हमें दूसरी बातों पर भी ध्यान देना चाहिए। मुझे इसमें शका है कि हमारे बन्दरगाह तथा रेल यातायात फौलाद के इन तीन कारखानों के लिए आने वाली मशीनों और सामान की व्यवस्था करने में समर्थ रहेंगे। इन तीन कारखानों के चलाने के लिए हमें तान्त्रिकों (टेक्नीशियनों) की बहुत अधिक आवश्यकता होगी। मुझे तो डर है कि देश में इतने अधिक तान्त्रिक मिल भी सकेंगे। विशेष रूप से उद्योग-पतियों का रख तो चिन्तनीय है, वे इन कारखानों के विस्तार से घबड़ा रहे हैं क्योंकि वे समझते हैं कि ये निश्चित समय के भीतर ही उत्पादन आरम्भ कर देंगे। इन लोगों ने रूसी विशेषज्ञों के प्रथम मण्डल को न तो आवश्यक जानकारी ही दी थी और न उसके साथ सहयोग करने को अपने तान्त्रिकों को ही नियुक्त किया। इस पर भी जब भिलाई में रूसियों की सहायता से फौलादी कारखाने के चलाने का निश्चय कर लिया गया, तब ये उद्योगपति इस बात के लिए उत्सुक हुए कि भारतीय विशेषज्ञों के उस मण्डल में उनके विश्वासपात्र कर्मचारियों को लिया जाय, जिन्हें फौलादी कारखानों के चलाने की शिक्षा के लिए सोवियत रूस भेजा जा रहा था। ये लोग उन आदमियों को हटवाना चाहते थे, जिन्होंने इनकी इच्छा के विरुद्ध रूसी विशेषज्ञों को पहली बार सहयोग दिया था। इतना ही नहीं, एक फौलादी उद्योगपति ने तो निजी उद्योगों की विशेषता दिखाने के लिए दिल्ली के विश्व उद्योग मेले में बड़े उत्साह के साथ एक स्टाल भी स्थापित किया था, जिसे उद्योग मन्त्री को बन्द करवा देना पड़ा था। इन विकास योजनाओं की सफलता से विदेशियों को भी हानि है, अतः वे चाहते हैं कि इनके क्रियान्वित होने में जितना ही बिलम्ब लग जाय, उतना ही अच्छा है। अभी कुछ ही महीने हुए कि इन कारखानों में से एक कारखाने का सबसे बड़ा अफसर गबन के मामले में गिरफ्तार किया गया है। इससे पता चलता है कि इन अत्यन्त महत्वपूर्ण विकास योजनाओं के अफसरों के चुनाव में पूरी सावधानी नहीं बरती जा रही है। भिलाई विकास योजना के सम्बन्ध में मुझे जो सूचनाएँ मिली हैं, वे उत्साहवर्धक नहीं हैं।

भिलाई स्टील प्रोजेक्ट सोवियत रूस द्वारा बनाया जायगा। रूस की ओर से प्रधान इंजीनियर श्री कृतेनका हैं। ये सोवियत रूस

की लौह तथा फौलाद उद्योग विभाग के उप मन्त्री भी हैं। श्री कृतेनका पर जर्मन आक्रमण के समय जूजनेत्स्क वेसिन के सम्पूर्ण लौह उद्योग के निर्माण का उत्तरदायित्व था। एक मन्त्री की अधीनता में, जिसके पास पहले से बहुत अधिक काम था, लौह तथा फौलाद मन्त्रालय स्थापित कर देने पर भी इस विभाग का प्रबन्ध अत्यन्त असन्तोषजनक है। इसका नतीजा यह है कि निश्चित समय से काम नहीं हो रहा और रूसी विशेषज्ञ चिन्तित हो रहे हैं। यह आशा की गई थी कि निर्माण भूमि के चौरस करने का काम वर्षा के आरम्भ के पूर्व ही सम्पन्न हो जायगा, किन्तु अभी ५६ प्रतिशत भूमि भी चौरस नहीं हो पायी है। इसके परिणामस्वरूप अधिक व्यय तथा अधिक विलम्ब हो रहा है। कारखाने की अनेकों उद्योगशालाओं की तो अभी नींव भी नहीं पड़ी है। रूस से शीघ्र ही कीमती मशीन तथा सामान आने वाला है, किन्तु उसे रखने के लिए अभी गोदाम भी नहीं बन पाये हैं। अभी तो निर्माण-कार्य की सुविधा के लिए अन्दरूनी रेल का केवल एक हिस्सा ही बन पाया है। जितना बड़ा काम हाथ में ले लिया गया है, उसके देखते हुए कर्मचारी बहुत ही कम हैं। समझौते की जो सबसे महत्वपूर्ण धारा है, उसका कोई लाभ नहीं उठाया जा रहा है यानी रूसी विशेषज्ञों द्वारा अपने सहायक भारतीयों को प्रशिक्षण देने का कार्य। उदाहरण के लिए बार-बार मांग करने पर भी रूसी खान इंजीनियरों को भारतीय इंजीनियर उपलब्ध नहीं हुए हैं, जबकि उन्होंने अपने काम का बहुत बड़ा हिस्सा पूरा कर लिया है—उन्होंने धातुओं के पता लगाने तथा कच्ची मिट्टी के हटाने इत्यादि का भारी काम समाप्त कर लिया है और वे अब जाने वाले हैं। भिलाई फौलादी कारखाने के लिए लगभग १०,००० व्यक्तियों की आवश्यकता है, किन्तु अभी तक इंजीनियर, क्लर्क तथा प्राविधिक कर्मचारियों को मिला कर ६०० व्यक्तियों की ही नियुक्ति हो पाई है। स्थिति को ठीक करने के लिए यदि तुरन्त ही जोरदार कदम नहीं उठाये गये और निश्चित समय के भीतर तेजी से प्रगति नहीं की गई, तो मुझे तो आशा नहीं कि भिलाई कारखाने में, जो निश्चित रूप से अनुकूल परिस्थिति में आरम्भ हुआ है, योजना काल के भीतर कोई भी उत्पादन सम्भव हो सकेगा। मैं यह मानता हूँ कि मैंने स्वेज नहर तथा अन्तर्राष्ट्रीय संकट और उनसे प्रभावित अन्य घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया है, इनसे हमारी विकास योजना की प्रगति में बाधा लाजिमी पड़ती है।

इन सब बातों पर विचार करने के बाद यह स्वभावतः प्रश्न उठता है कि हमने पहले केवल दो फौलाद के कारखानों को ही हाथ

में लेकर अपनी शक्ति उन्हीं पर क्यों नहीं लगा दी ? इस प्रकार बचे धन को यातायात, पशुपालन और बागवानी के कार्य में लगाया जा सकता था। ऐसा करने से देश की आर्थिक उन्नति के प्रमुख साधनों का विकास ही नहीं होता, अपितु लाखों-करोड़ों आदमियों को काम भी मिल जाता और इनमें लगाये हुए धन से शत-प्रतिशत लाभ होता। इस बीच में हम फौलादी कारखानों के अनुभव भी प्राप्त कर लेते और आगामी योजना काल में दो-तीन और कारखाने सस्ते दामों में लगा लेते। ऐसा करने से हम उन अपव्ययों से बच जाते, जो अनुभवहीनता के कारण अवश्य होते हैं। आजकल हर राज्य में बाँध बाँधने की सनक सवार है और हर राज्य दो-एक बाँध बाँध ही लेना चाहता है। इन बाँधों के सम्बन्ध में कुछ लोगों का मत है कि इनके निर्माण से और अधिक बाढ़ें आयेंगी। मैं उनके तर्क पर अपना कोई निर्णय नहीं दे सकता, यद्यपि बात बिलकुल सीधी लगती है। यह कहा जाता है कि भारत की भूमि के नीचे बहुत अधिक पानी है जो कृषि की सिंचाई के काम में आता रहता है। यदि किसी कारणवश यह पानी भूमि की नीचे की सतह से नहीं निकाला जाता, तो वह ऊपर आकर भूमि के सोखने की शक्ति को समाप्त कर देता है तथा फिर और अधिक बाढ़ें आने लगती हैं। इन कारणों से लोग बाँधों की अपेक्षा नल-कूपों की सिंचाई पर अधिक जोर देते हैं। ये तर्क कुछ प्रामाणिक प्रतीत होते हैं, क्योंकि बाढ़ों की रोक-थाम के अनेक सरकारी प्रयत्नों के होने पर भी आजकल बाढ़ से बहुत अधिक हानि हो रही है। अतः मेरा सुझाव है कि बड़े-बड़े महँगे बाँधों के निर्माण से पूर्व इन बातों पर सावधानी के साथ विचार कर लेना चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि नियोजक अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण योजना को सरलतापूर्वक क्रियान्वित करने से पूर्व ही कुछ घबड़ा गये हैं। इस समय संसार में जिन घटनाओं का चक्र चल रहा है, उनसे प्रतीत होता है कि अभी कुछ वर्षों तक संसार सुख की साँस नहीं ले सकेगा। एक कहावत है कि धनुष में दो प्रत्यञ्चा रखना सदा निरापद रहता है—इसके अनुसार मेरे विचार से योजना को भी दो भागों में तैयार करना चाहिए। इनमें से एक भाग को हम बुनियादी योजना कह सकते हैं। इसमें जनता की बुनियादी बातों पर विचार किया जा सकता है और इसे देशी साधनों से क्रियान्वित भी किया जा सकता है। दूसरे भाग में हमारी दूसरी आवश्यकताओं पर विचार किया जा सकता है और इसे विदेशी साधनों से क्रियान्वित किया जा सकता है। मैं मानता

हैं कि इन दोनों के बीच पत्थर की लकीर खींचना कठिन है। मेरी समझ में पहले भाग की रूपरेखा प्रथम योजना के आधार पर बना सकते हैं, जिसमें ज्यादा जोर उपलब्ध साधनों, आत्मनिर्भरता, पारस्परिक सहयोग और सहकारिता पर हो। योजना के सम्बन्ध में मैंने जो सुझाव दिये थे, उन्हें यहाँ रख देना उचित समझता हूँ :—

हठ और स्पष्ट नीतियों से युक्त निश्चित उद्देश्य रखिए। योजनाएँ नमनीय हों जो वार्षिक लक्ष्यों के अनुरूप निर्धारित की जा सकें। अर्थात् हम अपने वर्ष भर के लक्ष्यों को वर्ष के भीतर ही पूरा कर लें। आगामी दो वर्षों में मेरे कार्य का तरीका यह होगा कि प्रशासनिक ढाँचे को कठोर नियन्त्रण में लिया जाय, फालतू और अत्यधिक चीजों को कम किया जाय और सभी प्रकार के अपव्ययों तथा धन के दुरुपयोग को रोक दिया जाय। उस पर अतिरिक्त उत्तरदायित्वों को डाला जाय, धनवानों से धन खींचा जाय तथा निर्धनों की सहायता की जाय। विलास की वस्तुओं पर कर लगाया जाय और आवश्यक वस्तुओं को कर-मुक्त कर दिया जाय। योजना को सफल बनाने के लिए प्रत्येक समर्थ पुरुष से काम की अथवा बदले में धन की माँग की जाय। ग्रामोद्योग तथा लघु उद्योगों के द्वारा देश की आर्थिक दशा सुधारी जाय और निष्क्रिय लोगों में चेतनता, स्वावलम्बन तथा पारस्परिक सहयोग की भावना भर कर उनके समय तथा श्रम का लाभ उठाया जाय। इन सब बातों के साथ-साथ देशवासियों में राष्ट्रीयता, एकता तथा निःस्वार्थ सेवा की भावना उत्पन्न कर दी जाय, जिससे देश में कठोर अनुशासन तथा उत्साह का वातावरण उत्पन्न हो जाय और देशवासी नवीन भारत के आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचे के पुनर्निर्माण के लिए कटिबद्ध हो जायें।

अन्त में मैं प्रधान मन्त्री की उस अपील के सम्बन्ध में भी दो शब्द कह देना चाहता हूँ, जो उन्होंने योजना को श्रद्धा एवं विश्वास के रूप में स्वीकार करने के लिए राज्य परिषद् में की थी। प्रधान मन्त्री जो भी बात कहें, उसे आदर तथा सावधानी के साथ सुनना हम सबका कर्तव्य है, मैं खुद श्रद्धा के प्रभाव में विश्वास रखता हूँ। श्रद्धा आश्चर्यजनक काम कर सकती है, यह असम्भव को सम्भव बना सकती है और एक कहावत के अनुसार तो यह पहाड़ों को भी कँपा सकती है। किन्तु श्रद्धा भी साहस, त्याग, उत्साह और सचाई के समान ही अपने आप पैदा होती है। कोई भी मनुष्य दूसरे में तब तक श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर सकता, जब तक कि उसकी उस विषय में पूरी श्रद्धा न हो, जिसके सम्बन्ध में वह उपदेश देने जा रहा है। श्रद्धा एवं विश्वास केवल नारे

लगाने मात्र से ही पैदा नहीं होते । गांधी जी ने हमारे सामने उदाहरण रखा था, उपदेश ही नहीं दिया था । वास्तव में काम ही जनता के हृदय पर प्रभाव डालते हैं, कोरी बातें नहीं । गांधी जी ने जब खादी आन्दोलन आरम्भ किया तो उन्होंने जनता से ही विदेशी वस्त्रों की होली करने को नहीं कहा, अपितु उन्होंने अपने हाथ के कते हुए कपड़े भी त्याग कर तब तक लँगोटी लगाने का संकल्प किया, जब तक कि खादी का उत्पादन देश की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ न हो जाय । स्वराज्य प्राप्ति के लिए नमक सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ करने पर उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक स्वराज्य नहीं मिल जायगा, तब तक मैं साबरमती आश्रम में पैर नहीं रखूँगा । इन बातों को 'बीते समय की प्रणाली' कह कर बातों में उड़ाया नहीं जा सकता, क्योंकि आज भी आचार्य विनोबा भावे का जीवन्त उदाहरण हमारे सामने है । उन्होंने अपना भूदान आन्दोलन बिना किसी राजनीतिक पार्टी की सहायता के शुरू कर दिया, न उन्होंने अपने आन्दोलन के लिए किसी प्रकार का संगठन ही किया और न उसका प्रचार ही । यहाँ यह बता देना उचित होगा कि हमारी द्वितीय योजना के केवल प्रचार में ही १३ करोड़ २० की निधि रखी गई है । विनोबा जी के आन्दोलन में दृढ़ और जीवन्त विश्वास है जिसे निस्वार्थ लगन और तपस्या ने पवित्र कर सफल बना दिया है । भूदान आन्दोलन देश का शक्तिशाली आन्दोलन है । आज वह सभी में उत्साह भर रहा है एवं लोगों का समर्थन और सहयोग प्राप्त कर रहा है । जिन लोगों ने आरम्भ में इसकी खिल्ली उड़ाई थी, आज वे ही लोग उसके प्रशंसक तथा प्रबल समर्थक बन गये हैं । भूदान आन्दोलन को लोगों ने श्रद्धा का प्रतीक मान लिया है ।

जनता से यह आशा करना कि वह भूदान आन्दोलन के समान योजना को भी श्रद्धा का प्रतीक मान ले, एक दुराशा मात्र है । जिन लोगों ने इसका नियोजन किया है और जिनके कन्धों पर इसे क्रियान्वित करने का भार है, वे ही इसमें विश्वास नहीं रखते । इतना ही नहीं कि नियोजकों में से एक नियोजक ने ही असहमति प्रकट करते हुए शंका और मतभेद व्यक्त किया है, अपितु मन्त्रियों में खुल्लमखुल्ला योजना की विभिन्न बातों और सिफारिशों के सम्बन्ध में बहस-मुबाहिसा हुआ है ।

मुझे तो अब भी आशा है कि हमारे लोकप्रिय एवं प्रभावशाली प्रधान मन्त्री परिस्थिति की वास्तविकता का अध्ययन कर योजना को वह रूप प्रदान करेंगे, जिससे इसे लोकप्रिय समर्थन और सहयोग प्राप्त हो जाय ।

अध्याय १४

श्रम और श्रमजीवी सहकारी संगठन

आगामी योजना का मसविदा बनाने का काम प्रो० महालनोबिस को सौंपा गया था। शर्त्त यह लगाई गई थी कि योजना ऐसी बने कि करोड़, सवा करोड़ बेकारों को काम तो मिल जाय किन्तु देश में अत्यधिक मुद्रा स्फीति न फैलने पाये। उन्होंने योजना का ऐसा मसविदा बनाया जिसे अर्थशास्त्रियों के मण्डल ने विधिवत् स्वीकृत कर लिया है। किन्तु उनकी स्वीकृति का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि इसमें 'अगर' 'मगर' का भाड़भंखाड़ है और विघ्न-बाधाओं के सम्बन्ध में अनेक चेतावनियाँ दी गई हैं। लक्ष्यों के सम्बन्ध में बड़ी-वड़ी मान्यताएँ हैं, जिनकी अभी कोई पड़ताल नहीं हुई है एवं गोलमोल सरकारी नीतियाँ हैं जिनकी अभी तक कोई व्याख्या नहीं की गई है। इसे क्रियान्वित करने के लिए देशव्यापी संगठन की आवश्यकता है जिसकी अभी स्थापना होनी है। योजना में विभिन्न क्षेत्रों के उत्पादन की वृद्धि के आधार पर अधिक रोजगार देने का जो अनुमान लगाया गया है, उसके पूरा होने में जनता की शंका स्वाभाविक ही है, क्योंकि उसे प्रथम योजना के कार्य का कटु अनुभव हो चुका है। जनता ने देखा है कि कृषि एवं एवं उद्योग के उत्पादन में वृद्धि होने पर भी बेरोजगारों की संख्या बढ़ती ही रही है और इस उलटी बात का कोई कारण भी नहीं बताया गया है। यदि योजना के मसविदे के अनुमान पूरे भी हो जायें, तो भी एक जबर्दस्त चुनौती बाकी रह जायेगी। मेरे विचार से तो प्रशासन के लिए, नियोजकों के लिए और दरअसल हम सबके लिए बेरोजगार मनुष्य ही सबसे बड़ी चुनौती है। वह शारीरिक श्रम भी करने को तैयार है और उसे संविधान में काम को गारण्टी प्राप्त हो जाने के बाद भी हम ६ वर्ष की स्वतन्त्रता के बाद तक इतना काम नहीं दे सके हैं जिससे वह अपना जीवन-यापना कर सके। समाज के निर्माण की बात उसे खोखली और मजाक ही लगती है।

कहा जाता है कि योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री वी० टी० कृष्णामचारी ने कुछ मास पूर्व कहा था कि यदि उन्हें आगामी द्वितीय योजना के विनियोग एवं व्यय के लिए २०,००० करोड़ रुपये दे दिये जायें तो वे सभी के रोजगार की व्यवस्था करने में समर्थ हो जायेंगे—लेकिन इस बात से तो वही पुरानी कहावत याद आ जाती है कि 'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी'। एक बात और है और वह यह कि वित्त मन्त्री श्री देशमुख ने भी अनेक बार चेतावनी दी है कि विदेशी सहायता के बिना हम योजना को क्रियान्वित नहीं कर सकेंगे, हमने योजना के मसविदे में जितने लोगों को रोजगार देने का अनुमान लगाया है उसमें और भी काँट-छाँट करनी होगी और हमें थोड़ी प्रगति से ही सन्तुष्ट होना पड़ेगा। तो क्या फिर इन अभागे बेरोजगारों अथवा अल्प-रोजगार वालों के लिए कोई भी आशा नहीं है, जिनकी संख्या ६ से ६ करोड़ तक कूती गई है ? आगामी पाँच वर्षों में भले ही राष्ट्रीय आय २५ प्रतिशत बढ़ जाय अथवा करोड़, सवा करोड़ व्यक्तियों को काम मिल जाय अथवा दूसरे लोगों का जीवन-स्तर उठ जाय, इस अभागे को तथा इसके परिवार को तो बेकारी के कारण मिथ्याहार, भुखमरी और रफता-रफता मृत्यु का ही शिकार होना पड़ेगा—यद्यपि रजिस्टर में उसकी मृत्यु का कारण एक न एक बीमारी लिख दी जायगी। दुर्भाग्यवश हम कुटिल घेरे में पड़ गये हैं। रोजगार का क्षेत्र तब तक नहीं बढ़ सकता, जब तक कि लोगों की आय नहीं बढ़ जाय और इसके लिए विनियोग के लिए पर्याप्त बचत नहीं होती। किन्तु पूर्ण रोजगार के अभाव में बचतों में वृद्धि नहीं हो सकती। क्या हम इस कुटिल घेरे से निकलने का रास्ता नहीं निकाल सकते ? क्या हमारे देश में करने के लिए पर्याप्त काम नहीं है जो हम इतने बेकारों को रोजगार न दे सकें ?

क्या यह सच नहीं है कि प्रत्येक गाँव में हर फसल पर औसतन १० एकड़ कृषि योग्य भूमि किसी न किसी कारणवश परती पड़ी रह जाती है। पहले तो यह तरीका था कि जो किसान अपनी पूरी जमीन को नहीं जोत पाते थे, वे अपनी शेष भूमि को बटाई पर उठा देते थे, किन्तु अब वे नये लगान कानून के कारण ऐसा करने से डरते हैं। अतः अब लगभग ५० एकड़ कृषि योग्य भूमि परती पड़ी रहती है। इस भूमि से पाँच-छः लाख आदमियों को काम मिल सकता है। क्या यह सच नहीं है कि जोत के एकड़ बढ़ गये हैं और उत्तम बीज, खाद तथा सिंचाई की सुविधाओं के बावजूद उपज घट गई है ? इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि किसान खेती के विभिन्न कामों के लिए पर्याप्त

मजदूर रखने में समर्थ नहीं हैं। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की पुरानी पद्धति के मुताबिक यह तरीका था कि मजदूरों की मजदूरी फसल कटने पर वस्तु के रूप में दे दी जाती थी। अब बदली हुई परिस्थिति में मजदूरी नकद दी जाती है। ऐसी परिस्थिति में अब किसान के लिए असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है कि वह बुवाई, सिंचाई, नराई तथा कटाई इत्यादि विभिन्न कार्यों के लिए आवे भी मजदूर रख सके। क्या कोई ऐसा तरीका नहीं निकाला जा सकता जिसके द्वारा किसान को बेरोजगार अथवा अल्प रोजगार वाले लोग काम के लिए मिल जायें और उनकी मजदूरी का कुछ अंश तुरन्त तथा शेषांश वस्तु अथवा पैसे के रूप में फसल कटने पर चुका दिया जाय ?

यह तो सभी लोग जानते हैं कि गांधीजी ने गाँवों में कम्पोस्ट खाद के उत्पादन पर तथा मनुष्य के मल के उपयोग पर कितना जोर दिया था। इससे गाँवों की समृद्धि ही नहीं बढ़ जायगी अपितु स्वास्थ्य एवं सफाई में भी उन्नति हो जायगी। योजना में तीन उर्वरक कारखानों के खोलने में जितना रुपया लगाने का विचार किया गया है, यदि जापान के समान उसका एक तिहाई भी हड्डी की खाद तथा कम्पोस्ट खाद के उत्पादन पर खर्च कर दिया जाय, तो एक ओर तो बहुत से आदमियों को काम मिल जायगा और दूसरी ओर किसानों को अच्छा, सस्ता और अधिक खाद मिल सकेगा एवं हमारे यातायात पर भी अधिक भार न पड़ेगा।

एक बात और है कि विदेशों में तो रेलवे लाइन को छोड़ कर आसपास की सभी भूमि जोत ली जाती है, किन्तु भारत में रेलवे लाइनों के आस-पास की लाखों एकड़ भूमि बेकार पड़ी रहती है। बिना किसी विशेष लागत के इस भूमि का अच्छा उपयोग किया जा सकता है। इससे उत्पादन बढ़ सकता है और बहुत-से लोगों को काम भी मिल सकता है। इसके अतिरिक्त गाँवों में और भी काम हैं, जिन पर तुरन्त ध्यान देना चाहिए। इससे लोगों को काम भी मिल जायगा और गाँवों की दशा भी सुधर जायगी। इस समय मैं ग्रामीण क्षेत्र की बेकारी की ओर ही अपना ध्यान दे रहा हूँ क्योंकि न तो वहाँ पर रोजगार दफ्तर हैं और न आसपास निर्माण के बड़े-बड़े काम, जहाँ वे रोजगार तलाश कर लें। विवश हो कर बेचारों को हल्के-मन्दे रोजगार की तलाश में शहर में आना पड़ता है। रोजगार के लिए शहरों में भटकना ग्रामीणों के लिए कोई हितकर काम नहीं है। एक तो यह कि उनमें से बहुत कम को रोजगार मिल पाता है, दूसरे यह कि जिनको मिल भी जाता है वे गाँव के स्वस्थ वातावरण से दूर हो जाते हैं, पारिवारिक जीवन

को तरस जाते हैं और ग्रामीण समाज से बिछुड़ जाते हैं। इसके विपरीत उन पर शहरी जीवन का क्षुब्ध प्रभाव पड़ जाता है। इधर कुछ ही वर्षों में अपराधों में वृद्धि हुई है और इस वृद्धि का प्रधान कारण बेकारी हो सकती है। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि गाँवों में ही ऐसे संगठन हों जो ग्रामीणों के हित देख सकें और उन्हें गाँवों में अथवा अन्यत्र रोजगार दिलाने में सहायक हों। सरकार पूर्वोक्त सम्भावनाओं को आमतौर से स्वीकार करती हुई भी उनके खोजने में अपनी असमर्थता प्रकट करती है, क्योंकि आवश्यक संगठनों का अभाव है। अर्थशास्त्री मंडल ने योजना के मसविदे के सम्बन्ध में अपना जो स्मरण-पत्र दिया है, उसमें इस बात पर जोर दिया है कि योजना में जितने श्रम की आवश्यकता समझी गई है, उसे पूरा करने के लिए एक संगठन की स्थापना करनी चाहिए। कदाचित् इसकी स्थापना की कठिनाइयों का अनुभव करके ही राष्ट्रीय श्रम शक्ति के संगठन पर जोर दिया गया है। इस श्रम शक्ति के लिए भरती का क्या ढग होगा और व्यय कितना होगा, इस सम्बन्ध में नहीं बताया गया है। प्रति व्यक्ति मासिक व्यय ५०) ६० के अनुमान से योजना काल में कुल ६० करोड़ ६० का व्यय होगा। मण्डल के एक सदस्य श्री बी० आर० शेनोय ने दो कारणों से इसका विरोध किया है। उनका कथन है कि इस योजना में कुछ खाते-पीते लोग आ जायेंगे, जिनका खर्च उठाना अधिक व्ययसाध्य होगा और इसके द्वारा क्षेत्रीय अल्प रोजगार वालों को सहायता के कार्य में बाधा पड़ेगी। मैं इससे पूरी तरह सहमत हूँ।

बेकार खेतिहर मजदूरों को राहत देने के अत्यन्त महत्वपूर्ण और चिन्ताजनक सवाल पर सरकार, अर्थशास्त्री तथा दूसरे लोग बहुत दिन से विचार कर रहे हैं, किन्तु अभी तक इसका कोई हल नहीं निकल पाया है। अभी तक तो केवल इस समस्या की जटिलता तथा इसके सुलभाने में आने वाली बड़ी-बड़ी कठिनाइयों पर ही प्रकाश डाला गया है। मैंने भी इस समस्या पर कुछ विचार किया है और उपर्युक्त प्रश्न पर विचार करने के बाद मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि श्रमजीवी सहकारी संघ द्वारा गाँव के बेकार लोगों को कुछ राहत दी जा सकती है। मैं अपनी योजना की मोटी रूपरेखा प्रस्तुत कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि बेकारी के कारण गाँवों में जो बेचैनी और मायूसी छाई हुई है, उसके दूर करने में इस योजना से अवश्य सहायता मिलेगी।

१. इस योजना में श्रमजीवी सहकारी संघ का सारे देश में जाल-सा बिछा देने का सुभाव है। चार या पाँच मील के

क्षेत्र में जितने भी १० या १२ गाँव आयें, उन सबका एक सहकारी संघ स्थापित कर दिया जाय और प्रत्येक गाँव में उसका एक एजेंट मुकर्रर हो। जिले में श्रमजीवी सहकारी संघ का प्रधान कार्यालय रखा जाय और उचित स्थानों में उसकी शाखाएँ हों।

२. इस सहकारी संघ के उद्देश्य एवं लक्ष्य इस प्रकार होंगे—

- (अ) यह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के दफ्तर का कार्य करेगा।
- (ब) अपने सदस्यों को और उनके आश्रितों को रोजगार दिलायेगा और विशेष परिस्थिति में सहकारी संघ के श्रम केन्द्रों में ऐसे लोगों को काम देगा, जो इसके कम से कम ३ माह तक सदस्य रहे होंगे—एक सप्ताह में २ दिन ये लोग बिना काम के रहेंगे। इसका तात्पर्य यह कि प्रत्येक सदस्य को श्रम केन्द्र में हफ्ते में ५ दिन काम की गारण्टी रहेगी।
- (स) यह अपने क्षेत्र में गाँवों के लिए बिक्री और माल सप्लाई करने की एजेंसी के रूप में कार्य करेगा।
- (द) गाँवों के जितने साधन हैं, उन सबके पूर्ण उपयोग की व्यवस्था करेगा।
- (ई) गाँवों के नैतिक और भौतिक उत्थान का कार्य करेगा।

३. **सदस्यता**—सहकारी संघ के क्षेत्र में आने वाले गाँवों का कोई भी बालिग व्यक्ति जो इसके नियमों और उपनियमों का पालन करे सदस्यता शुल्क देने के बाद इसका सदस्य हो सकेगा। प्रारम्भ में यह सदस्यता शुल्क एक सप्ताह में ८ घण्टे का श्रम होगा यानी एक माह में ४ दिन।

४. **कार्य की योजना**—प्रारम्भ में सहकारी संघ अपना संगठन ढढ़ करने के अतिरिक्त इन कार्यों की ओर विशेष ध्यान देगा :—

- (अ) किसानों को वेतन के एक भाग की अदायगी की शर्त पर खेतिहर मजदूर देना। वेतन का शेष फसल कटने पर नकदी या वस्तु के रूप में दिया जायगा।
- (ब) गाँवों में कम्पोस्ट खाद और हड्डियों के खाद के निर्माण की व्यवस्था करना।
- (स) सहकारी संघ के सदस्यों और उनके आश्रितों को जिनमें काम दिया जा सके, ऐसे श्रम-केन्द्रों को स्थापित करना एवं दस्तकारी के सीधे-साधे कामों—जैसे कातना, कपास ओटना, तेल निकालना, टोकरी बनाना, रस्सी बनाना, ईंट बनाना—की व्यवस्था करना।

(द) जनता के कामों के लिए मजदूरों की व्यवस्था करना ।

५. आशा है कि प्रारम्भिक कुछ ही महीनों में हर सहकारी संघ के कम से कम १००-१०० सदस्य हो जायेंगे । सहकारी संघ का खर्चा उसके सदस्यता शुल्क से निकल आयेगा । फिर भी सरकार को पहले दो वर्षों में सहायता देनी चाहिए—पहले वर्ष में १५०० रु० और दूसरे वर्ष में १००० रु०, जिससे अतिरिक्त खर्च निकल सकेगा । सरकार को ३ वर्ष की अवधि के लिए ३००० रु० का कर्ज देना चाहिए । आशा है कि २ वर्ष में सहकारी संघ आत्मनिर्भर हो जायेंगे । सहकारी संघ के सदस्यों की संख्या यदि १०० से ऊपर हो जाय, तो प्रत्येक २५ अतिरिक्त सदस्य पर ५०० रु० के हिसाब से अतिरिक्त कर्ज दिया जाय । प्रथम २ वर्षों में कोई ब्याज न लिया जाय । यदि यह मान लिया जाय कि योजना काल में एक जिले में १०० सहकारी संघ संगठित हो जायेंगे और एक सहकारी संघ की औसत सदस्य संख्या २०० हो तो जिले के सहकारी संघों का व्यय कर्ज के रूप में ५ लाख रु० और सहायता के रूप में २॥ लाख रु० बैठेगा । इनके अतिरिक्त जिला सहकारी यूनियन और उसकी शाखाओं पर जो व्यय होगा, उसे सरकार को ही उठाना होगा, जो १ से २ लाख रु० तक पड़ेगा । साथ ही विशेष स्कोमों के लिए भी कर्ज देने की व्यवस्था होनी चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक जिले पर इस योजना के अन्तर्गत लगभग १० लाख रु० व्यय होंगे यानी ६ लाख रु० कर्ज के रूप में और ४ लाख रु० सहायता के रूप में । पूरे देश में करीब २५० जिले हैं, अतः सब मिला कर २५ करोड़ रु० व्यय आयेगा, यानी १५ करोड़ रु० कर्ज के रूप में और १० करोड़ रु० सहायता के रूप में । अर्थशास्त्रियों के मण्डल ने जो राष्ट्रीय श्रम शक्ति का सुझाव दिया है, उसकी तुलना में इस योजना में केवल चौथाई व्यय से भी कम होगा और श्रम शक्ति भी ५ गुनी संगठित हो जायगी, जो देशव्यापी होगी एवं उन लोगों से प्राप्त होगी, जिन्हें सहायता की सबसे अधिक आवश्यकता है । इस प्रकार श्रम सहकारी संघ की योजना से राष्ट्रीय श्रम शक्ति का उद्देश्य भी सिद्ध हो जायेगा और प्रो० शेनोय ने जो शंका प्रकट की है, उसका भी निराकरण हो जायगा । कर्ज की रकम को यदि अलग कर दिया जाय तो योजना काल में व्यय प्रति व्यक्ति २० रु० पड़ेगा—जो बिलकुल ही कम है, तिस पर इस रकम का अधिकांश व्यय उन ३० हजार शिक्षित युवकों के वेतन के रूप में व्यय होगा, जो इस संगठन को चलाने के लिए लगाये जायेंगे । इतना ही नहीं, मजदूर रोजगार दफ्तर के रूप में काम करने के अलावा, वे गाँवों में विकास कार्यों के लिए कर्ज हेतु छोटी बचतें संग्रह करने में अत्यन्त सहायक

होंगे । नियमानुसार खुद इन्हें भी योजना के अन्तर्गत विकास कार्यों में अपने सदस्यों के काम के वेतन का एक भाग बचत सर्टीफिकेट और ५ वर्षीय बौण्ड के रूप में प्राप्त होगा । नकद तकावी के स्थान पर किसानों को कुएँ, फार्म, मेंड, मकान आदि बनाने के लिए कर्ज का एक भाग सहकारी संघों से श्रम के रूप में दिया जायगा—जिस श्रम के वेतन का एक भाग नकद और एक भाग बौण्ड के रूप में दिया जायगा । इससे कर्ज के निर्देशित कार्य में व्यय की ही गारण्टी नहीं होती, अपितु कर्ज का एक भाग अपने आप विकास फण्ड में लौट आयेगा । मैं अनुभव करता हूँ कि एक नया प्रयोग होने के कारण इस योजना में अत्यधिक संगठनात्मक शक्ति, साहसिक प्रयास और अटूट उत्साह की आवश्यकता होगी, जैसी कि प्रत्येक नये कार्य में होती है । हो सकता है कि योजना के प्राथमिक दौर में उपयुक्त कार्यकर्ताओं को आकर्षित करने में कुछ कठिनाई पड़े, लेकिन यदि एक बार योजना चल निकली तो फिर ये कठिनाइयाँ रफा हो ही जायेंगी और लोग इसके महान् महत्व एवं ५ लाख गाँवों की सामाजिक व आर्थिक प्रगति पर पड़ने वाले गहरे प्रभाव को अनुभव करने लगेंगे । ये कार्यकर्ता अपने पुराने राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ताओं में से, नव शिक्षा प्राप्त ग्रेजुएटों और अण्डर ग्रेजुएटों में से—जिन्हें कुछ दिन प्रशिक्षण दे दिया जाय एवं ऐसे लोगों में से, जो अवकाश प्राप्त जीवन यापन कर रहे हैं किन्तु अब भी सेवा और त्याग की भावना से ओतप्रोत और जाग्रत हैं—निकाले जा सकते हैं । अन्य कठिनाइयाँ भी प्रकट की जा सकती हैं, किन्तु अन्य किसी अच्छी योजना के अभाव में मैं महसूस करता हूँ कि इसको आजमाना उपयुक्त ही रहेगा, क्योंकि इससे गाँवों में आशा, आत्मनिर्भरता और पारस्परिक सहयोग का वातावरण लाजिमी बनेगा एवं इस समय जो आलस्य, निष्क्रियता और नैराश्य फैला हुआ है, वह खत्म होगा । इसमें यदि असफलता भी मिले, तो भी लोगों में नये दृष्टिकोण और नये ओज का निर्माण होगा, बाद में हम जिस कार्य में भी उन्हें लगाना चाहें ये सद्गुण बड़े सहायक सिद्ध होंगे ।

अध्याय १५

बेरोजगारी और द्वितीय पंचवर्षीय योजना

मैं पाठकों के सामने अपने उन विचारों का पर्याप्त परिचय दे चुका हूँ जिनके द्वारा देश के बहुसंख्यक बेरोजगारों और अल्प-रोजगार वालों के लिए रोजगार के तरीके खोजने में मेरा मस्तिष्क लगा रहा है। लेकिन चूँकि आज भारतवर्ष की अधिकांश बुराइयों की जड़ ये बेरोजगारी ही है, और द्वितीय पंचवर्षीय योजना की कुँजी बेरोजगारी के खात्मे में ही निहित है, मैं इस प्रश्न पर और विस्तार से प्रकाश डालूँगा। सबसे पहले यह बता दूँ कि मैं अर्थशास्त्री या तान्त्रिक नहीं हूँ, न अंकशास्त्री हूँ, जिनकी आज बाहवाही है, मेरी पहुँच तो एक साधारण व्यक्ति के समान है, किन्तु उसमें मानवीयता और वास्तविकता अवश्य है, जिसमें रूढ़िवादी समझ और पूर्वधारणाओं का अभाव है। यह समस्या कितनी गूढ़ है और योजना में इसे कितनी प्राथमिकता दी जानी चाहिए, इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हैं। यह समस्या कितनी व्यापक है, उसके बारे में अलग-अलग मत हैं किन्तु उनके अन्तर का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। विचार-विनिमय के लिए मोटे तौर से मान लिया जाय कि १८ लाख लोगों को प्रतिवर्ष काम मिल जायगा, तो भी २। करोड़ बेरोजगार रहेंगे। बेरोजगार लोगों की संख्या १५.२ करोड़ है, अतः उक्त संख्या इसकी केवल १५ प्रतिशत बैठती है। निस्सन्देह इसमें छद्म और मौसमी बेरोजगारी शामिल नहीं हैं। अब तो विवादास्पद विषय इस समस्या को हल करने के तरीकों के सम्बन्ध में ही है। सबसे पहले वे लोग हैं जो यह सोचते हैं कि यदि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के विनियोग एवं व्यय के लिए अमुक धनराशि की व्यवस्था हो जाय तो सभी लोगों को रोजगार दिया जाना सम्भव हो जायगा। किन्तु चूँकि आवश्यक धनराशि का एक तिहाई रुपया भी उठाना सम्भव न होगा, अतः वे हताश हो जाते हैं।

नियोजकों ने ११० लाख लोगों को रोजगार देने की व्यवस्था की है। इसका तात्पर्य यह है कि योजना काल में ६० लाख नये लोगों को रोजगार देने के अलावा वे वर्तमान २० लाख बेरोजगारों को काम देंगे, जिनका कुल योग निस्सन्देह काफी अधिक हो जाता है। किन्तु अर्थशास्त्रियों एवं अन्य लोगों ने जबर्दस्त शंका प्रकट की है कि इस लक्ष्य को प्राप्त भी किया जा सकेगा या नहीं। उन्हें योजना के अन्तर्गत प्रस्तावित काम करने के तरीके के औचित्य के बारे में भी शक है। बाकी बेरोजगारों के लिए कथन है कि अगली योजनाओं में उन्हें काम मिल जायगा। लेकिन फिर नियोजकों ने ख्याल किया है कि इससे तो बड़ी असन्तोषजनक और खेदजनक स्थिति पैदा हो जायगी, अतः उन्होंने सिफारिश की है कि एक रोजगार सम्बन्धी योजना बना कर बेरोजगारी का बीमा या सहायता जैसी चीज की अवश्य व्यवस्था की जाय, जिसमें कम से कम शहरी क्षेत्रों में प्रशिक्षण की सुविधा दी जाय। सम्भवतः उन्होंने यह नहीं सोचा कि इससे गाँव के लोगों को शहरों की ओर भागने का और इशारा मिलेगा।

बेरोजगारी के बीमे की व्यवस्था के सम्बन्ध में सरकार और सर्वसाधारण का मत विपरीत है, क्योंकि ऐसा होने से हम और बड़ी मुसीबत में फँस जायेंगे। इस समय जिस चक्कर में पड़े हैं, उसके कारण पूर्ण रोजगार के लक्ष्य की ओर प्रगति करने में बाधा पड़ रही है—इस सुभाव से हम दूसरे चक्कर में पड़ जायेंगे। हम पूर्ण रोजगार की व्यवस्था नहीं कर सकते चूँकि हमारे पास पर्याप्त आर्थिक साधन नहीं हैं, इनका निर्माण हमारी बचतों से ही हो सकता है। लेकिन यदि पूरी तरह से लोगों को रोजगार नहीं मिलता, तो विनियोग के लिए पर्याप्त बचत भी नहीं हो सकती। निस्सन्देह यह सुभाव दिगा गया है कि इस चक्कर को एक हद तक खत्म किया जा सकता है, यदि विदेशी सहायता ली जाय या घाटे का राजस्वन किया जाय। विदेशी सहायता के सम्बन्ध में मेरा विचार यह है कि किसी देश को उस पर अत्यधिक निर्भर नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे स्वतन्त्रता पर कुछ न कुछ आघात पहुँचता ही है—राजनीतिक या आर्थिक कुछ भी हो, भले ही प्रारम्भिक अवस्था में यह प्रकट न हो। यह उन देशों के लिए विशेष रूप से अनुपयुक्त है, जिन्होंने हाल ही में स्वतन्त्रता प्राप्त की है या जो अब भी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं। एक दूसरे महत्वपूर्ण कारण से भी यह वांछनीय नहीं है, यानी इसके कारण घरेलू साधनों से अपनी पूँजी के निर्माण में बाधा पहुँचती है, और सरकारी व गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों में फिजूलखर्ची का बोल-बाला हो जाता है। एस्टीमेट और पब्लिक अकाउण्ट्स कमेटियों की

रिपोटों में विदेशी पूँजी के आधार पर बनी कुछ बड़ी स्कीमों का वर्णन है, उनके निर्माण के दुःखद अनुभव से मेरा यह दृष्टिकोण और दृढ़ हुआ है। उदाहरणार्थ, मैं केन्द्रिय ट्रैक्टर संगठन के मामले का हवाला दूँ, उसके द्वारा लाखों रुपयों के पुर्जों का आयात हुआ है, पर वे जैसे के तैसे पार्सलों में बन्द पड़े हैं। भले ही गवर्नमेण्ट हाउसिंग फैक्टरी हो या हिन्दुस्तान मैशीन टूल्स फैक्ट्री या कोई भी राष्ट्रीय शोध रसायन शाला जो विदेशी पूँजी से शुरू की गई हो, सबका वही हथ्र है। अधिकारियों को बस इस बात की उत्सुकता थी कि उन्हें ज्यादा से ज्यादा सामान प्राप्त हो जाये, इसका उन्हें ख्याल न था कि वर्षों तक इसकी जरूरत भी पड़ेगी या नहीं। उन्हें इस बात की फिक्र ही नहीं थी कि इस सामान के सार-संभार, अवमूल्यन और मूल्य पर ब्याज का भी खर्च है।

जहाँ तक घाटे के राजस्वन का सवाल है, उसे एक हद तक अपनाया जा सकता है। इसके कारण स्पष्ट हैं।

नियोजकों ने अतिरिक्त कर का सुझाव दिया है, किन्तु मैं उसके पक्ष में नहीं हूँ—इसके कारण मैं पहले बता चुका हूँ—अतः यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आवश्यक वित्त के अभाव में बेरोजगारी के कठिन सवाल के हल करने के लिए मेरे क्या सुझाव हैं? मैं इस सम्बन्ध में अपना हल बताने के पहले इस बात पर प्रकाश डालना चाहूँगा कि आखिर इस समस्या की मीमांसा मैं किस प्रकार करता हूँ। मेरे दृष्टिकोण से इस समस्या के हल में धन के प्रश्न को उतना बाधक नहीं मानना चाहिए जितना कि बताया जाता है। क्या श्रम सभी सम्पदाओं का स्रोत नहीं है? क्या रुपया समय से अधिक मूल्यवान् है? नहीं, समय अधिक मूल्यवान् है, क्योंकि बीता हुआ समय फिर वापस नहीं लाया जा सकता। इस देश में १५ प्रतिशत लोगों को मजबूरन पूरे वर्ष बेकार रहना पड़ता है और काफी लोगों को वर्ष के कई महीनों में। कुल मिला कर मोटे तौर से १००० करोड़ दिनों का श्रम बेकार जाता है, इस हिसाब से कि वर्ष में काम के २०० दिन होते हैं और श्री मोतीलाल गुप्ता के अनुसार १९५४ तक अतिरिक्त खेतिहर श्रम शक्ति ४२३ लाख थी। इस श्रम का मुद्रा में मूल्यांकन करने पर यह रकम १२ आना प्रतिदिन के हिसाब से एक वर्ष में ७५० रु० और पाँच वर्ष में ३५५० रु० बैठेगी। दूसरे शब्दों में यदि इस श्रम का हम समाज के कार्य में उपयोग कर सकें तो हम प्रथम पंचवर्षीय योजना से भी बड़े परिमाण में योजना तैयार कर सकते हैं। इतनी बड़ी संख्या में श्रम शक्ति के-विशेष रूप से युवा एवं सक्रिय लोगों के-निष्क्रिय रहने से देश को जबर्दस्त भौतिक हानि तो होती ही है,

इसके साथ-साथ जो नैतिक और सामाजिक क्षति होती है, उसका तो अन्दाज लगाना मुश्किल है। बेरोजगारी, गरीबी और अपव्यय का चोली-दामन का साथ है और बाध्य निष्क्रियता से निराशा और असन्तोष को जन्म मिलता है, जिसके अवांछनीय नतीजे होते हैं। चूँकि इतने अधिक श्रम और कौशल का उपयोग नहीं हो पाता, फलतः देश के साधन अविकसित रह जाते हैं और गरीबी व मानवी दुखस्थिति निरन्तर बढ़ती ही रहती है। इतना ही नहीं कि इस प्रकार के लोग खुद ही पस्त और हीनता से ग्रस्त हो जाते हैं, लेकिन अपना असर पूरे समाज रूपी शरीर पर इस प्रकार डालते हैं और उसके विकास में बाधक होते हैं, जिस प्रकार शरीर का लकवा मारा हुआ अंग—उसका उपचार यदि समय रहते पूर्ण रूप से कर दिया तब तो ठीक, अन्यथा वह पूरे शरीर को ले बैठता है। देश के सर्वाधिक हित का यह तकाजा है कि हम जनता के अधिकांश भाग को अधिक दिन तक बेरोजगार न रखें अन्यथा वे खतरनाक सिद्ध होंगे। अतएव सब चीजों के पहले बेरोजगारी दूर करने की समस्या को प्राथमिकता देनी चाहिए और द्वितीय पंचवर्षीय योजना की पूरी नीति व कार्यक्रम का संचालन इसी दिशा में होना चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में अपने मत को प्रकट करते हुए श्री गुलजारीजाल नन्दा ने अपने लेख में स्वीकार किया है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में बेरोजगारी में इजाफा हुआ है और विकास की गति इतनी नहीं है जिससे रहन-सहन के स्तर में उल्लेखनीय तरक्की हो सके। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि देश के बहुत से साधनों का उपयोग नहीं हुआ है, विशेष रूप से लोगों के श्रम का। वे आगे कहते हैं, “एक निश्चित समय पर विकास उस सीमा तक होता है, जिस सीमा तक समाज की बचतों को एकत्रित किया जाता है और उसके सम्भावित साधनों को सक्रिय कार्य में लगा दिया जाता है।” किन्तु वे इस वास्तविकता को नजरअन्दाज कर जाते हैं कि बेरोजगार लोगों की बचतों का बड़ा भाग उनके बेरोजगार अश्रितों के भरण-पोषण पर खर्च हो जाता है। अतएव नियोजकों के सुझाव के विपरीत कि कम आय वाले लोगों पर और बोझ डाला जाय, जरूरी यह है कि बड़ी संख्या में जो लोग बेकार हैं उन्हें काम देने के तरीके और साधन निकाले जायें जिससे उनके आश्रयदाताओं को और कुर्बानी न करनी पड़े। मेरे विचार में ऐसा करना सम्भव है और योजना के मसविदे में दी गई संख्या से अधिक लोगों को काम दिया जा सकता है। परमात्मा की कृपा से हमारे पास प्राकृतिक साधनों की कमी नहीं है। बड़ी मशीनों और बिजली के बिना ही इन साधनों का उपयोग करने के लिए पर्याप्त मनुष्य शक्ति भी

है। किन्तु राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमें जो मार्ग दिखाया था, उससे हम पश्चिमी देशों की प्राविधिक तरक्की की चकाचौंध के कारण डिग गये हैं। मुझे यह कहते हुए क्षोभ है कि यद्यपि हम बार-बार उनमें आस्था प्रकट करते रहे हैं, किन्तु हमारा अमल हमारी पहली घोषणाओं के विपरीत हुआ है। मुझे डर है कि यदि हमने अपने भविष्य के कामों के लिए मार्ग निर्धारण करते समय अपनी पिछली गलतियों की ओर ध्यान नहीं दिया, तो हमें जबर्दस्त निराशा का सामना करना पड़ेगा—विशेष रूप से बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के सम्बन्ध में। इस बात से सभी लोग सहमत हैं कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस समस्या को प्राथमिकता मिलनी ही चाहिए, क्योंकि हमारे दिमाग में यह वहम भर गया है कि बड़ी मशीनों को मँगाये या खुद बनाये बिना भारतवर्ष उन्लेखनीय तरक्की नहीं कर सकता है। गांधी जी के इस कथन को उद्धृत करना यहाँ उपयुक्त ही है :—

“मशीनों की भी अपगी जगह है, इसे सभी मानते हैं। किन्तु इन्हें मानवी श्रम का स्थान नहीं देना चाहिए। मैं कुटीर उद्योगों की मशीनों में प्रत्येक सुधार का स्वागत करूँगा; पर मैं यह मानता हूँ कि हाथ के काम को बन्द कर बिजली से चलने वाले तकिए लगवाना जुर्म है, जब तक आप करोड़ों किसानों को उनके घरों में ही दूसरा काम देने के लिए तैयार न हों…………।

यन्त्रीकरण उस समय ठीक है जब निर्धारित काम को पूरा करने के लिए लोगों की संख्या बहुत कम हो। जहाँ जरूरत से ज्यादा काम करने वाले लोग उपलब्ध हों, जैसे भारतवर्ष में, ऐसे स्थान पर यह अनिष्टकारी है। हमारे सामने यह समस्या नहीं है कि हम अपने करोड़ों देशवासियों को किस प्रकार आराम दें। समस्या यह है कि हम उनके फालतू समय का किस प्रकार उपयोग करें, जो वर्ष में केवल ६ माह ही काम कर पाते हैं। भारतवर्ष में २० लाख गाँवों में करोड़ों की संख्या में जब जीवित मशीनें उपलब्ध हैं, उनकी जगह मृत मशीनों को लगाना गलत है। मशीन का सदुपयोग तो यही है कि वह मानव-प्रयास में सहायक हो। मशीनों के उपयोग का वर्तमान रुझान तो यह है कि कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में सम्पदा एकत्रित होती जाती है और करोड़ों स्त्री-पुरुषों

की कोई परवा नहीं होती जिनके मुँह से उन मशीनों को लगा कर रोटी छीन ली जाती है ।”

मुझे आशा है कि हममें से प्रत्येक गांधी जी की इस सलाह पर मनन करेगा और इस पर अमल करने में पूरी शक्ति लगा देगा । मैं यह बात कोई भावुकतावश नहीं कर रहा, अपितु मैं अपने निजी अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि मौजूदा परिस्थिति में यही सबसे अधिक उपयुक्त है ।

भारतवर्ष में मशीनों से टूटकर लेने के लिए मनुष्य मौजूद है । मत्स्य के लिए मुझे ट्रैक्टरों द्वारा कार्य में व्यय का हिसाब लगाने का मौका मिला था । हिसाब लगाने पर देखा गया कि मनुष्यों के द्वारा कार्य करने से उसमें ज्यादा खर्च पड़ता था, अतः ट्रैक्टर का विचार त्याग दिया गया । अपने पक्ष के समर्थन में मैं यहाँ कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर ऐमनर नरकसे का कथन उद्धृत करता हूँ :—

“अमरीकन मशीनें अमरीकन श्रम को ध्यान में रख कर बनाई जाती हैं, ये बहुधा विस्तृत, स्वचालित और श्रम बचाने वाली होती हैं । ये आर्थिक रूप से उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होती हैं जहाँ मजदूर काफी हैं और सस्ते हैं । अविकसित देशों में बाहर से आने वाले आदर्श बड़े औजार उन देशों में वर्तमान स्थिति के अनुकूल विशेष रूप से बनाये जाने चाहिए । किन्तु अमल में इस विचार का बहुधा ख्याल नहीं किया जाता, औजार के सस्तेपन की तरफ हो ध्यान रहता है कि बड़ी तादाद में उन्हें तैयार कर उन राज्यों के बाजारों में भेज दिया जाय । जो देश अपने विकास की प्राथमिक अवस्थाओं में हैं उनके लिए सीधे-सादे औजार अधिक उपयुक्त होंगे । ऐसे देशों में आप देखेंगे कि नदियों के बाँध स्त्री-पुरुष सिर पर टोकरियों में मट्टी ले जाकर बना रहे हैं । यह तरीके आर्थिक रूप से आगे बढ़े हुए देशों के लिए उपयुक्त नहीं होंगे । बड़े-बड़े कामों में मजदूर बड़ी निपुणता के साथ एक दम काम करने लगेंगे, यह आशा करना गलत है । कुछ भी हो, वे अपने श्रम से देश की उत्पादन-क्षमता में वृद्धि के लिए योग देंगे । वे कम से कम प्रच्छन्न रूप में और अधिक बेरोजगार तो न रहेंगे ।” (एमनर नरसके द्वारा लिखित ‘प्रोब्लेम्स ऑफ कैपीटल फौरमेशन इन अण्डरडेवेलप्ड कंट्रीज’, पृ० ४५)

प्रथम पंचवर्षीय योजना का हमारा अनुभव भी सुखद नहीं हुआ। इसके द्वारा प्रो० नरकसे के विचारों की पुष्टि होती है। यद्यपि बड़े-बड़े माल के आयात में काफी रुपया खर्च हुआ और विदेशी विशेषज्ञों के भी बड़े मशविरे लिये गये, किन्तु उत्पादन और रोजगार देने की जो सम्भावनाएँ व्यक्त की गई थीं, वे पूरी नहीं हो सकीं। इन सब चीजों को मद्देनजर रखते हुए, मैं इस बात को निस्संकोच कह सकता हूँ कि हमें अपनी बड़ी स्कीमों को, जिन्हें 'कैपीटिल इन्टेसिव स्कीम' कहा जाता है, हाथ में लेने के सम्बन्ध में बहुत सतर्क रहना चाहिए, जो बेरोजगारी की समस्या को हल करने की जगह और अधिक लोगों को बेरोजगार बना देंगी।

इस सम्बन्ध में मैं कानूनगो कमेटी की सिफारिश का उल्लेख करना चाहूँगा, जिसमें कहा गया है कि कपड़े की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने का सबसे सन्तोषजनक तरीका यही है कि हथकरघों को एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार बिजली के करघों के रूप में बदल दिया जाय। यह बात गाँधीजी की गम्भीर सलाह के बिल्कुल विपरीत है। श्री बैकुण्ठ महता ने अपने पूर्ण युक्ति-संगत लेख में बताया है कि हथकरघा उद्योग के द्वारा माँग को बड़ी सुविधा से पूरा किया जा सकता है, शर्त यह है कि इसे आवश्यकतानुसार सूत प्राप्त होता रहे। आपने आगे लिखा है कि यदि कानूनगो कमेटी की उक्त सिफारिशों को लागू किया गया तो इसका नतीजा यह होगा कि १२,००,००० लोग ६ वर्ष में अपने काम से बेकार हो जायेंगे।

हथकरघा उद्योग को सूत की सप्लाई कितनी कम की जाती है, इस सम्बन्ध में १९५४ की आडिट रिपोर्ट (सिविल) का निम्नलिखित मामला अच्छी तरह प्रकाश डालता है कि हथकरघा उद्योग की ओर व्यापार और उद्योग मन्त्रालय का क्या रवैया है :—

“हथकरघा उद्योग को सप्लाई करने हेतु मध्यम दर्जे के सूत के उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने अमरीकी कपास मँगाने वाली मिलों को आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया। फलतः ३१ मार्च १९५३ तक ३८ मिलों को १,३३,८५,३५६ रु० की आर्थिक सहायता दी गई। यद्यपि सरकार से सहायता प्राप्त कर अमरीकन कपास हथकरघा उद्योग को मदद देने के उद्देश्य से मँगवाई गई थी, किन्तु टैक्सटाइल कमिशनर ने इस महत्वपूर्ण शर्त के सम्बन्ध में कोई भी आदेश जारी नहीं किये। अतः आडिट इस बात की पुष्टि नहीं कर सकता

कि सरकार ने मिलों को जो आर्थिक सहायता दी थी, उसका अपेक्षित उद्देश्य के लिए ही व्यय हुआ। टैक्सटाइल कमिशनर द्वारा रखे गये हिसाब-किताब के आडिट होने पर इस बात का पता लगा कि चूँकि मध्यम दर्जे का सूत तैयार करने के लिए आवश्यक तादाद में उपयुक्त श्रेणी की भारतीय कपास उपलब्ध नहीं है, अतः उस कमी को पूरा करने के लिए ही सरकार ने आर्थिक मदद दी थी। इस कपास से जो भी सूत तैयार हो, उसके निर्यात पर आम पाबन्दी लगा दी गई थी। फिर भी एक मिल को इस सहायता प्राप्त अमरीकन कपास से या अमरीकन कपास में मिली देसी रुई से बने सूत को निर्यात करने की अनुमति दे दी गई। इस अनुमति के औचित्य और इस मिल को दी गई १० लाख रु० की आर्थिक सहायता को वसूल करने के मामले पर सरकार विचार कर रही है। कुछ अन्य मिलों ने इस सहायता प्राप्त कपास से या इस अमरीकन कपास में देसी कपास मिला कर फाइन सूत तैयार कर लिया। जब आडिट ने इस बात को पकड़ा तो १८ मिलों से ३,२८,८७६ रु० वसूल कर लिये गये—इनसे ३,३०,७४० रु० वसूल होने थे, शेष १८७० रु० छोड़ दिये गये।”

इस मामले की मिसाल के बाद अपनी तरफ से और कुछ कहने को नहीं रह जाता। इससे जाहिर है कि टैक्सटाइल कमिशनर और मेरी राय में तो व्यापार और उद्योग मन्त्रालय हथकरघा उद्योग के हितों का कितना ख्याल रखते हैं ! इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि आया आर्थिक सहायता के रूप में दी गई रकम वसूल हुई या नहीं, चिन्ता की बात यह है कि सहायता प्राप्त अमरीकन कपास से बना सूत जितनी तादाद में निर्यात हो जाने दिया गया या जितनी तादाद में फाइन सूत बना, उतनी ही हथकरघों को सप्लाई होने वाले सूत में कटौती हो गई। मुझे इसमें शंका नहीं है कि यदि हथकरघा उद्योग किसी और मंत्री के हाथ में होता, जिसे कुटीर उद्योगों के विकास में अधिक विश्वास होता और उसकी दिलचस्पी दूसरी ओर न होती तो कर्त्तव्य की इस अवहेलना की गुंजाइश न थी। चूँकि कुटीर उद्योगों को दूसरी पंचवर्षीय योजना में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और आशा है कि उपभोग की चीजों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति योजना काल में कर दी जायगी, साथ ही

काफी अधिक संख्या में लोगों को रोजगार दिये जायेंगे—अतएव यह परमावश्यक है कि इनका पारस्परिक सम्बन्ध और संगठन उचित प्रकार से दृढ़ कर दिया जाय । यह भी आवश्यक है कि इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए नीति निर्धारण और अमल का कार्य एक ही मंत्रालय के हाथ में सौंपा जाय । यह आश्चर्य की बात है कि हथकरघा उद्योग और दस्तकारी को अन्य कुटीर उद्योगों से अलग कर दिया गया है । यदि कुछ बातें ध्यान में रख कर इन्हें अलग-अलग मंत्रालयों में रखा गया तो मुझे डर है कि कुटीर उद्योगों की प्रगति पर जबर्दस्त आघात पहुँचेगा । अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पिछले अधिवेशन में श्री बैकुण्ठ महता की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई थी, उसने कुछ सुझाव दिये हैं, मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूँ—मैं योजना आयोग से आग्रह करता हूँ कि उनको स्वीकार कर लिया जाय । चूँकि श्री गुलजारीलाल नन्दा ने स्वतः इस बात को कहा है कि इन उद्योगों का स्थायी आधार पर और भारतीय अर्थतन्त्र के आवश्यक अंग के रूप में विकास किया जायगा, अतः अब मैं जरूरी नहीं समझता कि इस पक्ष पर और जोर डालूँ ।

कुटीर उद्योगों के बाद इमारतों के निर्माण और आवास-व्यवस्था का स्थान है, जिसमें कुशल और अकुशल श्रमिकों को सबसे अधिक रोजगार दिया जा सकता है । यद्यपि श्री नन्दा का कथन है कि इमारतों के निर्माण में रोजगार की सम्भावनाएँ अस्थायी हैं, किन्तु मैं उनसे सहमत नहीं हूँ । उन्होंने खुद स्वीकार किया है कि इस समय शहरी क्षेत्र में मकानों की इतनी कमी है कि १ करोड़ मकान बनने ही चाहिए । इस हिसाब से केवल मकानों के निर्माण में ही १० वर्षों के लिए १० लाख लोगों को रोजगार मिल जाता है । खराब मकानों की जगह नये मकान बनाये जायेंगे और अगले १० वर्षों में आबादी में भी वृद्धि होगी, इन बातों को ध्यान में रखा जाय तो और भी अधिक लोगों की जरूरत होती है । इमारतों के निर्माण के इस विस्तृत कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए २० लाख से ३० लाख लोगों को करीब-करीब स्थायी रूप से इस कार्य में लगा देना कठिन न होगा । श्री नन्दा ने अपने लेख में बताया है कि इस योजना के लिए राज्य व केन्द्रीय मंत्रालयों ने रूपया भी दिया है, मुझे आशा है कि वे निर्माण कार्य को बड़े पैमाने पर करावेंगे । मैं समझता हूँ कि यदि यह स्कीम आवश्यक है तो इसे वित्तीय साधनों की कमी के नाम पर खत्म नहीं किया जायगा । दूसरी ओर निर्माण कार्य में इस समय में आने वाले खर्च को ठेकों की वर्तमान प्रणाली को हटा कर काफी कम किया जा सकता है । इतना ही नहीं कि बड़े-बड़े ठेकेदारों के स्थान पर राष्ट्रीकरण की गई निर्माण संस्थाओं और

मकान निर्माण सहकारी संघों की स्थापना हो, किन्तु इस बात का भी आश्वासन हो जाना चाहिए कि वे १० प्रतिशत से अधिक मुनाफा न कमायें और एक ठेका एक निश्चित रकम, मान लीजिए ५ लाख, से अधिक का न हो। इस सम्बन्ध में सावधानी बरती जाय कि जितने अधिक लोगों को सम्भव हो ठेके दिये जायें। इमारतों के निर्माण कार्य के लिए सहकारी संघों की स्थापना को प्रोत्साहन देने के लिए पूरा प्रयास करना चाहिए। इसके साथ ही साथ, जैसा कि मैंने 'श्रमिक सहकारी संघ' का उल्लेख करते हुए सुझाव दिया था, यह सम्भव है कि इन सहकारी संघों में कार्य करने वाले श्रमिकों को भी तैयार किया जा सकता है कि वे अपने वेतन के भाग को राष्ट्रीय बौण्डों के रूप में स्वीकार कर लें। इस प्रकार उनके वेतन के एक भाग से पूँजी के निर्माण में मदद मिलेगी। यदि इस प्रकार के तरीकों का उपयोग न किया गया तो कुछ विकास स्कीमों बिना अमल के ही न रह जायेंगी, अपितु श्रमिक भी एक बड़ी संख्या में बेरोजगार रह जायेंगे। इस दृष्टिकोण की पुष्टि प्रोफेसर ऐगनर नरकसे के इस मत से हो जाती है :—

“इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी जरूरी है कि देश का वास्तविक पूँजीगत ढाँचा स्थानिक श्रम और स्थानिक सामग्री के द्वारा ही उत्पादित और निर्मित होता है। इमारतों, सड़कों, बाँधों, जलकल और भूमि सुधार के कार्य विदेशों से आयात की गई मशीनों और सामान की तुलना में बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं, यद्यपि मशीनों आदि की हवा सर्वसाधारण के मस्तिष्क में अधिक भरी रहती है।”

किसी भी हालत में अपनी पूर्व धारणावश ऐसा कोई भी मौका हाथ से न जाने देना चाहिए, जिससे और भी अधिक लोगों को काम देने की सम्भावना होती हो और मुझे आशा है कि योजना आयोग उपर्युक्त सुझावों को मद्देनजर रखते हुए विकास की किसी भी स्कीम को ठुकराने के पूर्व उसकी पूरी जाँच-पड़ताल कर लेगा। मैं इस बात को कहना भी जरूरी समझता हूँ कि केन्द्रिय सरकार के कार्यालय दिल्ली में ही इकट्ठे न किये जायें, उन्हें पूरे देश में फैला देना चाहिए और दपतरों के लिए इमारतों का निर्माण बिलकुल ही बन्द कर देना चाहिए। अलग-अलग स्थानों में केन्द्रिय सरकार के कार्यालयों की स्थापना से स्थानिक लोगों को अतिरिक्त रोजगार मिल जायेगा।

रोजगार के अन्य साधनों का उल्लेख करने के पूर्व इमारतों के निर्माण कार्य के सम्बन्ध में दो बातों के बारे में मैं और बताऊँगा।

पहलो बात यह कि यदि गृह निर्माण आदि का कार्य मेरे बताये परिमाण में प्रारम्भ किया गया तो निश्चय रूप से इसके सहायक उद्योगों, सीमेण्ट और चूना, सफाई सम्बन्धी चीजें और बिजली का सामान, ईट, खपरैल, कील, लकड़ी के दरवाजे व खिड़कियों आदि के निर्माण में वृद्धि होगी। इनमें से अधिकांश चीजें कुटीर और लघु उद्योगों द्वारा तैयार की जा सकती हैं।

दूसरी बात यह कि राज, बढ़ई आदि के प्रशिक्षण का कार्य पूरे देश में कराया जाय, जिससे बड़ी संख्या में कुशल कारीगर तैयार हों। विशाल निर्माण कार्यक्रम की पूर्ति के लिए इनकी आवश्यकता होगी। यह कार्य कठिन नहीं है, क्योंकि इनके प्रशिक्षण में बहुत ज्यादा व्यय न होगा, क्योंकि प्रशिक्षण का समय कम होगा और वेतन आकर्षक होंगे। हाँ, शिक्षित नवयुवक इन कार्यों को अपनायें, इसके लिए उन्हें तैयार करने में कुछ कठिनाई होगी। कांग्रेस को राज्यों में और केन्द्र में शासन ग्रहण किये हुए १६ वर्ष से अधिक हो गये, यह बड़ी दयनीय अवस्था है कि गांधीजी द्वारा प्रतिपादित बेसिक शिक्षा का समावेश अभी गिने-चुने विद्यालयों में ही हुआ है, अन्यथा शिक्षित लोगों में हाथ के काम के प्रति जो अनिच्छा है उसे हमने अब तक दूर कर दिया होता। एक बात और, इस समय वर्तमान प्रचलित शिक्षा की सभी भर्त्सना करते हैं, फिर भी उसे खत्म करने या सुधारने के लिए कोई कदम नहीं उठाया जा रहा है। ग्रेजुएटों और अण्डर ग्रेजुएटों की सीमारहित बाढ़ यूनीवर्सिटियों और स्कूलों से आ रही है, जिससे बेरोजगारों की संख्या हर वर्ष हजारों की तादाद में बढ़ जाती है। मैं इस सम्बन्ध में यहाँ कुछ सुझाव देता हूँ, यदि उन पर अमल किया गया तो मुझे विश्वास है कि उनके हृदय में हाथ के काम के प्रति जो घृणा है, उस दृष्टिकोण में सुधार होगा और वे भविष्यगत अपने जीवन-संग्राम में जीभूने के लिए अच्छी तरह सज्जित हो जायेंगे।

(१) जब तक कोई विद्यार्थी इन दस्तकारियों में निपुणता का सर्टीफिकेट प्राप्त न कर ले तब तक उसे हाईस्कूल सर्टीफिकेट, यूनीवर्सिटी डिग्री या और कोई डिप्लोमा प्रदान न किया जाय :—

- (अ) कृषि और वागवानी,
- (ब) कताई और बुनाई,
- (स) चित्रकारी और बढ़ईगीरी,
- (द) मट्टी के बर्तन बनाना और ईंट बनाना,
- (य) ईंट पकाना,

(र) रंगाई और छपाई,

(ल) सिलाई और खाना पकाना (केवल लड़कियों के लिए) ।

(२) किसी भी व्यक्ति को तब तक किसी सरकारी या अर्ध-सरकारी पद पर नियुक्त न किया जाना चाहिए, जब तक अपेक्षित योग्यता के साथ-साथ वह उपर्युक्त किसी काम में अपनी निपुणता का सर्टीफिकेट प्रस्तुत न करे ।

(३) सरकारी और अर्ध-सरकारी नौकरियों में लगे अस्थायी कर्मचारी को तब तक स्थायी न किया जाय, जब तक वह इसी प्रकार का सर्टीफिकेट प्रस्तुत न करे ।

(४) सभी यूनीवर्सिटियों और कालेजों में विद्यार्थियों की जरूरत की चीजों की खरीद-फरोख्त के लिए सहकारी संघों की स्थापना की जाय । प्रत्येक यूनीवर्सिटी के लिए सहकारी बैंक और डेरी की स्थापना के लिए भी प्रयास किये जाने चाहिए । इनमें पार्ट टाइम काम करने के लिए विद्यार्थी ही रखे जायें । सभी यूनीवर्सिटियों में सहकारी कार्य-केन्द्रों की भी स्थापना हो, जहाँ विद्यार्थियों को किसी दस्तकारी या उद्योग में प्रशिक्षण दिया जाय । आत्मनिर्भर विद्यार्थियों के लिए अलग होस्टलों की स्थापना की जाय और प्रशिक्षण के साथ-साथ उनके लिए पार्ट टाइम काम की व्यवस्था की जाय ।

(५) निर्धारित पाठ्यक्रम के अलावा उन्हें हरिजनों और मजदूरों में समाज-सेवा कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय । विशेष रूप से इन लोगों में वे निरक्षरता निवारण और सामाजिक शिक्षा देने का कार्य करें ।

(६) अवकाश के समय व छुट्टियों में इन्हें उत्साहित किया जाय कि ये योजना के अन्तर्गत होने वाले विकास कार्यों में भाग लेने के लिए श्रम संगठन और काम करने वाले दलों का निर्माण करें ।

(७) समाज-सेवा स्कीमों की जिम्मेदारी यूनीवर्सिटियों और कालेज के शिक्षकों को दी जाय, जिन्हें वे विद्यार्थियों की सहायता से सम्पन्न करें ।

(८) प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा किये गये उपर्युक्त कार्यों का रिकॉर्ड नियमित रूप से रखा जाय और सरकारी व अर्ध-सरकारी पद के लिए चयन करते समय इनका पूरा ख्याल रखा जाय ।

(९) इन सब के अतिरिक्त यदि श्रम-कर लागू करने का सुभाव स्वीकृत हो जाता है, जिसके अनुसार प्रत्येक स्वस्थ शरीर वाले बालिग

पुरुष को १२ दिन का श्रम राज्य के लिए करना है, तो शिक्षित नवयुवक के हृदय में हाथ के काम के प्रति जो घृणा भरी है उसे बड़ी जल्दी दूर किया जा सकेगा ।

भोजन, घर और कपड़े के बाद दो चीजें आती हैं, जिन पर लोग पैसा खर्च करते हैं, वे हैं यातायात और स्वास्थ्य । रेलवे और पानी के जहाजों के बारे में तो बहुत कुछ सुना जाता है कि योजना में उनके विस्तार के लिए आवश्यकतानुरूप धन राशि क्यों निर्धारित नहीं की गई, किन्तु बैलगाड़ियों और देशी नावों के बारे में एक भी शब्द नहीं कहा जाता, जो आज भी अधिकांश लोगों के यातायात और माल ढोने के प्रमुख साधन हैं । मेरा विचार है कि पूर्ण रूप से सहकारी आधार पर उनका संगठन और विकास करने से हम बहुत अधिक लोगों को रोजगार दे सकेंगे । साथ ही ग्रामनिवासियों को यातायात की नियमित सुविधा तो देंगे ही, वर्तमान तरीके में जो समय और शक्ति का विनाश होता है उसमें भी उल्लेखनीय बचत हो जायगी । इसी प्रकार जनता के यातायात के लिए मोटरों के परमिटों में यदि पर्याप्त वृद्धि कर दी जाय, जिसकी बहुत अधिक सम्भावनाएँ हैं, तो मुझे बताया गया है कि १ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल जायगा ।

इसी प्रकार लोग दवाओं में काफी धन खर्च करते हैं । यदि राज्य सरकार जिन दवाओं की सर्वाधिक माँग होती है उनके शोध, उत्पादन और बिक्री की सस्ते दर पर व्यवस्था करे, तो इसमें शक नहीं कि बहुत से लोग इस काम में लग सकते हैं । इस बात को सभी जानते हैं कि स्वर्गीय हकीम अजमलखाँ के औषधालय 'हमदर्द दवाखाने' के मुनाफे से आयुर्वेदिक और तिब्बिया कालेज को सहायता दी जाती है । इस प्रकार के कई उदाहरण दिये जा सकते हैं जहाँ औषधियों के उत्पादन और विक्रय से जबर्दस्त मुनाफे कमाये जाते हैं । मुझे विश्वास है कि यदि औषधियों के उत्पादन का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय तो हम बहुत अधिक लोगों को रोजगार देने के अलावा सस्ते दामों पर विशुद्ध औषधियाँ भी दे सकते हैं । मैं इन विषयों पर अलग से प्रकाश डालूँगा ।

डूरी

सारे देश में ही शहरी क्षेत्र में अच्छे दूध, मक्खन का बड़ा अभाव है । हम देहातों का सारा का सारा दूध छीन कर साइकिलों, रेल व मोटर से बड़े शहरों में पहुँचाते हैं—इसके विपरीत प्रयास यह होना चाहिए कि शहरों और गाँवों दोनों जगह दूध का उत्पादन बढ़ाया जाय

और इस उद्देश्य के लिए आवश्यक पूँजी लोगों से ही एकत्रित करने में कोई दिक्कत न होगी। मुझे इस बात में शक नहीं है कि आवश्यक कोशिश करने से दूध की सप्लाई ५० प्रतिशत नहीं तो २५ प्रतिशत बढ़ाने में कोई कठिनाई नहीं होगी—योजना के मसविदे में भी यही उल्लेख है। इस प्रकार लोगों को रोजगार देने को बड़ी सम्भावना हो जाती है। इस का भी मैं अलग से उल्लेख करूँगा।

सरकारी नौकरी

योजना के मसविदे में २४ लाख लोगों को सरकारी और गैर-सरकारी कामों में लगाने का प्रस्ताव किया गया है। इस सम्बन्ध में मैं दो बातों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

पहली बात यह है कि यह आम धारा है कि यद्यपि नियुक्तियों के सम्बन्ध में नियम और आदेश हैं, किन्तु नौकरियाँ देने के मामले में जबर्दस्त भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी व्याप्त है। यह कहा जाता है कि पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा चुनाव होने की स्थिति में भी बहुधा दरखास्तें भेजने के लिए जो नोटिस निकाला जाता है, उसकी शब्दावली इस प्रकार की होती है कि उसमें वर्णित योग्यताएँ उमी व्यक्ति पर सही उतरती हैं जो पहले से नजर में होता है। हजारों उम्मीदवार केवल जाबते के लिए बुलाये जाते हैं और उन्हें अनावश्यक व्यय और कष्ट भुगतने पड़ते हैं। इतना ही नहीं, व्यक्तिगत सिफारिशों का भी जबर्दस्त ख्याल किया जाता है। हो सकता है इस में कुछ औचित्य हो और न भी हो, किन्तु इससे हमारे नवयुवकों के दिल फुक जाते हैं और उनमें असन्तोष भर जाता है। अतएव यह आवश्यक है कि अपने पद का दुरु-पयोग करने वाले और निर्धारित नियमों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों को अपदस्थ करने और उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करने के लिए उपयुक्त कदम उठाये जायें।

दूसरी बात यह है कि विकास प्रोजेक्टों और राष्ट्रीय विस्तार सेवाओं में काफी बड़ी संख्या में नई नियुक्तियाँ होगी। किसी कारणवश मौजूदा पदाधिकारियों की यह धारणा हो गई है कि यदि उन्हें अपने पद सुरक्षित रखने हैं, तो उन्हें अपने हाकिमों को खुश रखना चाहिए, भले ही उनके सुपुर्द काम में सफलता प्राप्त हो या असफलता। उनका ख्याल है कि यदि एक गाँव में स्कीम असफल भी हो गई तो उन्हें किसी दूसरी जगह भेज दिया जायगा। उनमें यह माँदा ही नहीं है कि वे गाँव में अपनी जगह बना सकें और लोगों में अपने प्रति सदाशय पैदा कर सकें। यह एक गम्भीर मामला है, जिस की ओर ध्यान दिया जाना

चाहिए । मैं महसूस करता हूँ कि उपयुक्त नियमों का निर्माण किया जाना चाहिए और पहली बार नियुक्तियाँ परीक्षण के रूप में होनी चाहिए । यदि उसके कार्य का प्रतिफल एक काम में अच्छा नहीं निकलता, तो उसकी दूसरे गाँव में बदली नहीं की जानी चाहिए । यह बात बहुत साधारण प्रतीत हो सकती है, किन्तु चूँकि विभिन्न स्कीमों की सफलता इन्हीं लोगों पर निर्भर है, अतएव हमें अत्यन्त सतर्क रहने की आवश्यकता है ।

इस समस्या के सम्बन्ध में भौतिक और वित्तीय दृष्टिकोण अपनाने के अलावा, विशेष रूप से शिक्षित लोगों में, इसकी तीव्रता को देखते हुए एक मनोवैज्ञानिक पहुँच की आवश्यकता है । सरकार क्या करने में समर्थ होती है या असमर्थ होती है, यह बात तो दूसरी है, इन लोगों को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि सरकार इस दिशा में चतुर्मुखी प्रयास कर रही है ।

रोजगार के दफ्तरों के ऊपर बहुत बड़ी रकम खर्च की जाती है । ये दफ्तर इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं, पर इस समय जिस प्रकार ये काम कर रहे हैं उसे न कहना ही ठोक है, सोच कर गुस्सा ही पैदा होता है । वे समझते हैं कि उनके कार्य की सिद्धि इसी में है कि वे रोजगार तलाशने वालों के नाम दर्ज कर लें और इस सूची को सरकारी दफ्तरों और अन्य मालिकानों को पहुँचा दें । कभी-कभी नाम दर्ज करने में भी लापरवाही बरती जाती है और कुछ मामलों में यह भी शिकायत मिली है कि नामों को पहले की तारीखों में दर्ज कर दिया गया, ताकि उन्हें नौकरी मिलने में प्राथमिकता प्राप्त हो जाय । मेरे दृष्टिकोण से उनको बेरोजगारों के मित्र, दार्शनिक और मार्ग-प्रदर्शक के रूप में कार्य करना चाहिए । एक कल्याणकारी राज्य के महत्वपूर्ण अंग के रूप में उन्हें कार्य करना चाहिए, नौकरशाही ढंग पर यंत्रवत् नहीं । उन्हें नवागन्तुक व्यक्ति के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिए, उसकी कठिनाइयों और समस्याओं को समझना चाहिए, और उन्हें हल करने के लिए अपनी सामर्थ्यभर पूरी-पूरी जानकारी, सलाह और मदद देनी चाहिए । प्रत्येक रोजगार के दफ्तर में एक-दो प्रशिक्षण और कार्य के केन्द्र होने चाहिए, जहाँ अत्यधिक जरूरतमन्द लोगों को अन्तरिम सहायता के रूप में कार्य दिया जा सके । मैं यह भी सुझाव देना जरूरी समझता हूँ कि सरकार को किसी भी हिसाब से प्राथमिकताओं के सम्बन्ध में हिदायतें दे देनी चाहिए, नाम दर्ज कराने की तारीख ही केवल मात्र फैसलाकुन बात नहीं होनी चाहिए । मिसाल के तौर पर

यदि दो व्यक्तियों में और बातें तो समान हों, किन्तु एक व्यक्ति अपने परिवार में अकेला धनोपार्जन करने वाला हो, तो उसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसी प्रकार जिस व्यक्ति को सहारा देने वाला कोई न हो, उसे उस व्यक्ति की तुलना में प्राथमिकता दे देनी चाहिए, जिसकी पीठ पर कोई मददगार हो। मैं मानता हूँ कि इस तरीके में भी शिकायतें मिलेंगी। इस कठिनाई को दूर करने के लिए और रोजगार दफ्तरों में मानवतावादी भावना प्रस्तुत करने के लिए मेरा सुझाव है कि यूनीवर्सिटी के प्रोफेसरों, स्कूल के शिक्षकों, अवकाश प्राप्त तजुर्बेकार लोगों, विशेषज्ञों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को इन दफ्तरों के कार्य से सक्रिय रूप से सम्बद्ध कर दिया जाय—निस्सन्देह अवैतनिक रूप में। सबसे खास बात यह है कि उस व्यक्ति को समझाया जा सकेगा कि यद्यपि उसे लाभदायक काम नहीं मिल रहा है, पर वह निष्क्रिय तो न रहेगा—निष्क्रिय रहने से बहुमूल्य समय तो बर्बाद होता ही है; पर साथ ही यह हानिकारक है और मनुष्य की योग्यता व कुशलता का ह्रास भी कर देती है। उसे इस बात की सलाह दी जा सकती है कि वह प्रशिक्षण प्राप्त करे या किसी विशेष विषय में विशेषता प्राप्त कर ले, इससे उसकी व्यक्तिगत योग्यता में वृद्धि हो जायगी। उससे कहा जाय कि वह अपने परिवार और देश के लिए उपयोगी सेवा में कुछ न कुछ निश्चित समय नियमित रूप से रोजाना अवश्य लगाये ताकि वह सक्रिय बना रहे। इस काम को वह उसी उत्साह और उत्सुकता से करे मानो यह भी वेतन वाला काम हो। इससे उसकी योग्यता और कुशलता में निस्सन्देह बहुत वृद्धि होगी और कुछ लाभदायक रोजगार मिलने की सम्भावनाएँ बढ़ जायेंगी। उसे उत्साहित किया जाय कि वह रोजगार दफ्तर के सम्पर्क में रहे। दफ्तर के पास व्यापार और रोजगार सम्बन्धी नियमानुक्रम स्वीकृत और विस्तृत स्कीमों भी होनी चाहिए, जिन्हें व्यक्ति और सहकारी संघ खुद चलाने के लिए ले सकें। इन्हें शुरू करते समय हर प्रकार की सहायता दी जानी चाहिए। मिसाल के तौर पर सहकारी संघों को रजिस्टर्ड कराने, उपयुक्त भूमि प्राप्त करने और इसके लिए इमारत बनवाने, कण्ट्रोलशुदा चीजों को हस्तगत करने आदि में जबर्दस्त कठिनाई होती है और विलम्ब होता है। रोजगार दफ्तर का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह प्रत्येक सुविधा और सहायता प्रदान करे।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए मैं श्रमिक सहकारी संघों की स्कीम के सम्बन्ध में सुझाव दे चुका हूँ। मैं चाहता हूँ कि उसमें कुछ संशोधन करके शहरी क्षेत्र में बेरोजगारों को

सहायता देने के लिए उस पर विचार किया जाय। उदाहरण के लिए, शहरी क्षेत्रों में मैं एक परिवार में से एक से अधिक व्यक्तियों को सहकारी संघ में शामिल होने की अनुमति न दूँगा। प्रारम्भ में मैं महीने में १० या १२ दिन से अधिक की गारण्टी देने का भी कायल नहीं हूँ, कार्य-केन्द्रों में न्यूनतम वेतन में ५० प्रतिशत का इजाफा कर दिया जाय यानी यह डेढ़ आना प्रति घण्टा हो। अन्य संशोधन स्थानिक परिस्थिति के अनुसार किये जायें। निस्सन्देह ये संशोधन श्रमिक वर्ग में से बेरोजगारी दूर करने के उद्देश्य से किये गये हैं।

शिक्षित वर्ग में से बेरोजगारी दूर करने के लिए अन्य तरीके औद्योगिक और व्यापारिक सहकारी संघों के द्वारा अपनाते होंगे। शिक्षित बेरोजगारों को निम्न श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :—

- (अ) जिनके माता-पिता खाते-पीते हैं और इनके प्रशिक्षण का खर्च उठाने के अलावा प्राथमिक पूँजी के रूप में कुछ रुपया भी दे सकते हैं।
- (ब) जिनके माता-पिता इनका एक-दो वर्ष के लिए खर्च उठा सकते हैं, किन्तु प्रशिक्षण का खर्च नहीं उठा सकते और प्राथमिक पूँजी नहीं जुटा सकते।
- (स) तीसरी श्रेणी में वे हैं जिन्हें अविलम्ब रोजगार की आवश्यकता है और जिनका कोई सहायक नहीं है।

पहली श्रेणी वालों के लिए सरकार को केवल यह जानकारी और सलाह देने की आवश्यकता है कि वे कौन-सा धन्धा या उद्योग अपनावें, और इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी जाय। यदि इनके माता-पिता प्राथमिक पूँजी की पूरी रकम देने में असमर्थ हों तो सरकार किसी काम धन्धे को शुरू कराने के लिए दो-तीन लोगों को मिलवा दे और आवश्यक सलाह और मार्ग-प्रदर्शन करती रहे।

दूसरी श्रेणी वालों के लिए सरकार उनकी व्यक्तिगत प्रवृत्ति और स्थानिक परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दे। प्रशिक्षण की समाप्ति पर दूसरों से मिल कर उन्हें सहकारी संघ खोलने के लिए उत्साहित किया जाय। सरकार को आर्थिक सहायता के साथ-साथ प्राविधिक एवं आवश्यकतानुसार दूसरी सहायता देनी होगी।

तीसरी श्रेणी वालों के लिए सरकार को विशेष प्राथमिकता देने और अधिक ध्यान व चिन्ता करने की आवश्यकता है। या तो उन्हें सर-

नौकरियों में खपा दिया जाय अथवा इमारत-निर्माण सहकारी संघों में तत्सम्बन्धी प्रशिक्षण देने के बाद लगा दिया जाय । प्रशिक्षण का व्ययसरकार उठाये ।

दूसरी और तीसरी श्रेणी वालों के लिए पूँजी के प्रबन्ध के सम्बन्ध में मेरे निम्न सुझाव हैं :—

पहली बात यह है कि सहकारी संघों के सदस्य बनने वालों में काफी संख्या उन लोगों की होगी जो यदि निर्भर नहीं तो सरकारी या बीमा कम्पनियों के कर्मचारियों से सम्बन्धित हो सकते हैं, अतएव एक आदेश निकाल दिया जाय कि यदि कोई कर्मचारी नियमानुकूल स्वीकृत सहकारी संघ का सदस्य हो जाता है तो इन सहकारी संघों में लगाने के लिए उसे दो या तीन माह का वेतन अग्रिम दे दिया जाय । यह रुपया एक या दो वर्ष में वसूल किया जाय । इसी आधार पर पेन्शनयाप्ता लोगों का ४ महीने की पेन्शन पेशगी दी जा सकती है । यदि आवश्यक हो तो सरल शर्तों पर सरकार और अधिक आर्थिक सहायता दे सकती है ।

कुटीर और लघु उद्योगों व व्यापार के अलावा, उन्हें भूमि सुधार, वन-निर्माण, कृषि, बागवानी, फल-संरक्षण, डेरी, मछली-पालन, खान, औजार-निर्माण, इमारत-निर्माण कत्ताई, बुनाई, रँगाई, छपाई आदि के काम अपनाने के लिए उत्साहित किया जा सकता है । मैंने हिसाब लगा कर देखा है कि योजना काल में ऐसे २५ हजार सहकारी संघ बनाना कठिन न होगा । मुझे विश्वास है कि बेरोजगारों को काम देने के अलावा, ये उन्हें आत्मनिर्भर और सहकारिता प्रेमि बना देंगे । सरकारी बौण्डों में अपनी आय का एक भाग लगाने के साथ-साथ वे अपने श्रमिकों में से निरक्षरता को खत्म करने में समर्थ होंगे ।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि रोजगार देने की सम्भावनाएँ बहुत हद तक हमारी आयात और निर्यात नीति पर निर्भर हैं । मुझे व्यक्तिगत रूप से जानकारी है कि व्यापार और उद्योग मन्त्रालय द्वारा आयात के सम्बन्ध में तथाकथित उदार नीति अपनाने के कारण अनेकों फैक्ट्रियाँ बन्द कर देनी पड़ीं और दूसरे कारखानों में बहुत से मजदूर कम कर देने पड़े । सरकार द्वारा आर्थिक सहायता के बल पर मँगाये गये अमरीकन कपास से बने सूत को निर्यात करने के परमिट दे दिये गये, इससे बहुत से हथकरघे ठप्प हो गये । विदेशों से बिसकुट, शहद और दूध जैसी चीजें आयात करने में कोई तुक नहीं दिखाई देती । भारत में शहद आयात करने का मतलब तो यही है कि उल्टे बाँस बरेली ले जाये जायें ।

औषधियों के आयात में भी अधिक से अधिक कटौती कर देनी चाहिए । युद्ध काल में पेंसिल तथा अन्य स्टेशनरी के सामान का आयात बन्द कर दिया गया था, अब कोई वजह समझ में नहीं आती कि उनके आयात की अनुमति दे दी जाय, सिवा इसके कि कुछ विशिष्ट व्यक्ति इस प्रकार के विचार रखते हैं । संक्षेप में मेरा कथन यही है कि हमें अपने योजना काल में और उसके बाद भी स्वदेशी की नीति अपनानी चाहिए, तभी कुटीर और लघु उद्योग पनप सकेंगे एवं बेरोजगारी का खात्मा हो सकेगा । मुझे विश्वास है और मेरा यही आग्रह है कि हम बुद्धिमत्ता और दूरन्देशी का उपयोग कर समय की पुकार सुनें और इस मामले में अपने व्यक्तिगत विचारों की परवा न करें ।

अन्त में, यदि राज्य या राज्य नियन्त्रित कारपोरेशन या कारपोरेशनों के बस की बात नहीं है कि सम्पूर्ण आयात को अपने हाथ में ले सकें, तो कम से कम यह ध्यान रखा जाय कि परमिट केवल चन्द व्यक्तियों के हत्थे न पड़ जायें, अपितु पूरे देश में उनका वितरण हो जाय जितने अधिक लोगों के हाथों में देना सम्भव हो उन्हें दे दिया जाय । यह केवल इसीलिए आवश्यक नहीं है कि हम समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था के निर्दिष्ट लक्ष्य को अपना चुके हैं, अपितु कर जाँच आयोग की सिफारिशों के अनुरूप भी यह आवश्यक है कि किसी एक व्यक्ति की आय कम से कम आय वाले व्यक्ति की आय से ३० गुनी से अधिक नहीं होनी चाहिए । हो सकता है कि हर क्षेत्र में इस सिद्धान्त पर अमल सम्भव न हो, पर किसी भी मामले में सरकार को यह करने का अधिकार नहीं है कि वह अमीरों को और अमीर बना दे ।

अध्याय १६

द्वितीय पंचवर्षीय योजना और विविध सुझाव व निष्कर्ष

प्रधान मन्त्री श्री नेहरू ने अपनी एक प्रेस कांफ्रेंस में घोषणा की थी कि दूसरी पंचवर्षीय योजना नमनीय होगी, उसमें कई वार्षिक योजनाएँ होंगी और उनका निर्णय हर साल होगा। हो सकता है कि यह आवश्यक हो और कुछ सीमा तक लाभदायक भी हो कि योजना नमनीय रहे, पर मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि यदि हम निश्चित लक्ष्य निर्धारित नहीं करते और अपनी नीति को स्पष्ट, असन्दिग्ध, और दृढ़ नहीं बनाते तो योजना निरर्थक है। रो-रो के घिसटने वाली नीति जो समय की दुरवस्था या व्यक्तियों की सनक पर निर्भर हो और जिसका कोई निश्चित लक्ष्य न हो, हमें दूर तक नहीं ले जा सकती। अतएव जनता को और नियोजकों को योजना के लक्ष्य निर्धारित करने के सम्बन्ध में निश्चित होना चाहिए। इतनी ही आवश्यक बात इन लक्ष्यों को सिद्ध करने के लिए आवश्यक नीति को अपनाने की है। योजना के मसविदे के मुताबिक द्वितीय पंचवर्षीय योजना के प्रमुख उद्देश्य ये हैं :—

- (अ) राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि ।
- (ब) तीव्रगामी औद्योगीकरण—बुनियादी उद्योगों पर विशेष जोर देते हुए ।
- (स) सबको रोजगार ।
- (द) सामाजिक न्याय ।

इन उद्देश्यों के सम्बन्ध में किसी को मतभेद नहीं हो सकता, किन्तु इन उद्देश्यों के प्रति हमारे दृष्टिकोण, जोर और प्राथमिकता के सम्बन्ध काफी मतभेद होना लाजिमी है ।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सितम्बर अधिवेशन में श्री सी० डी० देशमुख ने उद्देश्यों के प्रश्न को प्रस्तुत करते हुए उनके महत्व को अपने ढंग से बड़े प्रभावशाली शब्दों में व्यक्त किया था। आपने कहा :—

“हम नदी घाटी योजनाओं पर कार्य कर रहे हैं। हमारे सामने औद्योगिक विस्तार की स्कीमें भी हैं, जिनसे दूसरे और तीसरे दर्जे की नौकरियाँ कुछ वर्षों बाद मिलने लगेंगी.....हमें इनमें से जो अच्छा लगे चुनना है। यह लक्ष्य साफ है। यह रोजगार देने का पहलू है। हमारी राष्ट्रीय आय अगले १५ से १८ वर्ष तक यहीं की यहीं रहे, लेकिन इससे सिर नहीं फूटेंगे, किन्तु यदि बेरोजगारी जारी रही तो सिर टूटते हुए नजर आयेंगे।”

योजना के मसविदे के एक समर्थक द्वारा इस स्पष्टोक्ति को मद्देनजर रखते हुए मुझे इस बात में कोई शंका नहीं है कि जनता और नियोजक इनमें से किसे चुनेंगे। जिस चीज में सर फूटने का अन्देश हो, उसे सावधानी से टालना ही उचित है। किसी योजना को सफलता से अमल में लाने के लिए हमें एक शान्त वातावरण की आवश्यकता है, अन्यथा लक्ष्य की ओर हमारी प्रगति में जबर्दस्त बाधा पड़ जायगी। पूर्ण रोजगार और सामाजिक न्याय हमारा तात्कालिक उद्देश्य होना चाहिए और हमारी नीति एवं योजनाएँ इन उद्देश्यों को ध्यान में रख कर ही बनाई जानी चाहिए। उदाहरणार्थ, हमें सोचना चाहिए कि देश की अर्थ-व्यवस्था में कुटीर और लघु उद्योगों की क्या स्थिति होगी? योजना के मसविदे में इनका उल्लेख इस रूप में हुआ है, जैसे इनका उपयोग अन्तर्कालीन व्यवस्था के रूप में कर लिया गया है। हमें सोचना है कि आया यह दृष्टिकोण उचित है, अथवा गत तीस वर्षों और उससे भी अधिक समय से राष्ट्रपिता की प्रेरणा से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस इन्हें अर्थ व्यवस्था के आवश्यक अंग के रूप में मानती रही है, तो हम इस दृष्टि से इनका विकास करें? यह नीति सम्बन्धी बुनियादी प्रश्न है, जब तक इस प्रश्न पर तथा अन्य दूसरे महत्त्वपूर्ण प्रश्नों जैसे राष्ट्रीयकरण, जनता से कर्ज, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि पर हम निर्णयात्मक और दृढ़ फैसले नहीं लेते, तब तक मुझे अन्देश है कि हम सबको रोजगार देने या समाजवादी ढंग की समाज-व्यवस्था करने के उद्देश्य की ओर तेजी से अग्रसर हो सकेंगे।

मिश्रित अर्थव्यवस्था—राष्ट्रीयकरण भी एक ऐसा महत्वपूर्ण प्रश्न है, जिसके सम्बन्ध में एक निश्चित नीति होनी चाहिए। यद्यपि कांग्रेस राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है, किन्तु उसने यह उचित ही निष्कर्ष निकाला है कि वित्तीय साधनों और प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव में सभी क्षेत्रों का राष्ट्रीयकरण कुछ समय के लिए सम्भव न होगा। मैं इस

निर्णाय के पक्ष में एक ओर बजह से भी हैं यानी कि हमें उस सामाजिक दृष्टिकोण का अभाव है, जिसकी आवश्यकता एक राष्ट्रीयकरण किये गये उद्योग में होती है। यह ठीक है कि हम जानबूझ कर किसी व्यक्ति की जेब में से उसकी स्वीकृति के बिना एक पैसा भी नहीं निकालेंगे, यही बात और कड़ाई से दूसरों के बारे में लागू हो। राज्यों को हमें जो धन अदा करना पड़ता है, उसे चुराने का हमें कोई पश्चात्ताप नहीं होता, भले ही वह टैक्स की अदायगी हो या रेल का किराया हो, और सबसे बुरी बात यह कि समाज भी इसका बुरा नहीं मानता। कर जाँच आयोग ने सरकार का इस ओर ध्यान उचित ही खींचा है। इसमें कोई शक नहीं कि इस वाजिब धन की चोरी को रोक दिया जाय तो इससे राज्यों को जबर्दस्त आय होने लगेगी और हो सकता है कि फिर कुछ दिन तक किराया और टैक्स बढ़ाने की जरूरत ही न पड़े। किन्तु मैं जिस बात पर जोर देना चाहता हूँ वह यह है कि हमें इस खतरे से सावधान रहना चाहिए कि इस नीति पर अमल करते समय दोनों व्यवस्थाओं के अच्छे तत्वों को ग्रहण करने के स्थान पर हम कहीं दोनों व्यवस्थाओं की बुराइयों को ही प्रतिपादित न करने लगें। उदाहरण के लिए बहुत से राज्यों में और राज्य नियन्त्रित कारखानों के प्रबन्धकों में कार्यकुशलता और कार-बारीपन का अभाव रहा है। इसका नतीजा यह है कि इन कारखानों में मुख्य रूप से नातजुर्बेकारी, लापरवाही और कभी-कभी अफसरों में सामाजिक दृष्टिकोण तथा जनता के प्रति कर्तव्य में खामी के कारण जनता के पैसे का जबर्दस्त नुकसान हुआ है। इसके कारण सरकार को बदनामी का वायस होना पड़ा है और राष्ट्रीयकरण की नीति पर भी लांछन आया है। निजी कारखानों के विपरीत यहाँ उन्हें कोई खतरा नहीं है और न कोई प्रभावशाली पाबन्दी और रोकथाम ही है। इनकी सेवाएँ सुरक्षित हैं। यदि वे एक नदी घाटी योजना में अयोग्य साबित होते हैं, तो उन्हें दूसरा कोई सरकारी काम यदि उससे बड़ा नहीं तो उतना बड़ा तो दे ही दिया जाता है। यदि कुछ समय बाद वे यहाँ भी अयोग्य साबित होते हैं, तो उन्हें किसी न किसी पद पर नियुक्त कर विदेश भेज दिया जाता है। यह अत्यन्त असन्तोषजनक स्थिति है और इसे यथा सम्भव शीघ्र ठीक किया जाना जरूरी है। अपनी अन्तिम रिपोर्ट में एस्टीमेट कमेटी ने इस प्रकार के कारखानों और कामों के कार्य की जाँच करने के बाद कई बहुत ही महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं और मुझे विश्वास है कि सरकार इन्हें स्वीकार कर उन पर अमल करेगी।

दूसरी ओर, निजी क्षेत्र में औद्योगिक अपने भविष्य के सम्बन्ध में अनिश्चित स्थिति होने के कारण नये उद्योग शुरू करने में और

मौजूदा उद्योगों को विकसित करने में उत्साहित नहीं हैं, जैसा कि होना चाहिए। उनका केवल इसी ओर ध्यान है कि जितना रुपया निकाला जा सके निकाल लें। इस प्रकार न तो हमें समाजीकरण किये गये उद्योग से लाभ मिल रहा है और न निजी उद्योगों से। इस बात से हमें उस बुद्धिमान् महापुरुष की बात याद आती है, जिसने एक सुन्दर स्त्री के विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। स्त्री ने कहा था कि हमारे विवाह के प्रतिफलस्वरूप जो सन्तान होगी, उसका मेरा सा रूपा होगा और तुम्हारा सा मस्तिष्क। महापुरुष ने विनम्रता से कहा था कि इसकी क्या गारण्टी है? ऐसा भी तो हो सकता है कि सन्तान मेरी तरह कुरूप हो और तुम्हारे समान मस्तिष्क वाली! मुझे आशा है कि पूरे देश को दृष्टि में रखते हुए ही उसके सर्वाधिक हित के लिए नीतियों को निर्धारित करना और उन्हें अमल में लाना चाहिए। इस सिलसिले में मेरा सुझाव है कि जितने भी उद्योग सम्भव हों सहकारिता के आधार पर प्रारम्भ किये जायें। मजदूरों को प्रबन्ध में शामिल करने के लिए उपयुक्त कदम उठाये जायें। मैं महसूस करता हूँ कि इससे उत्पादन में वृद्धि होगी एवं औद्योगिक कारखानों में मितव्ययिता और कार्यकुशलता बढ़ेगी।

निजी उद्योगों का प्रमुख उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। यह स्वाभाविक है कि उसकी दिलचस्पी इसी बात में हो कि उसके द्वारा बनी चीजों के दाम अधिकाधिक हों। यह उस अवस्था में सम्भव न होगा, जब सरकारी क्षेत्र में उसे सस्ते मूल्य में तैयार किया जाय। अतएव यह आवश्यक है कि दोनों क्षेत्र एक दूसरे पर छाये नहीं। लेकिन कुछ समय के लिए उच्च स्तर पर इस बात के प्रयास हुए और उसमें सफलता मिली कि निजी क्षेत्रों को बुनियादी और भारी उद्योगों को चलाने की अनुमति मिल जाय, जो सरकार की नीति के अनुसार पूरी तरह केवल सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत लिये जाने वाले थे। हर अवस्था में राज्य और राज्य नियन्त्रित उद्योगों के लिए कर्मचारी चुनने में अतिरिक्त सावधानी की आवश्यकता है ताकि सम्पत्तिशाली वर्ग योजना को अष्ट करने में समर्थ न हो जाय।

जनता से कर्ज—यद्यपि वित्त मंत्री और उनके सलाहकारों ने कर्ज के रूप में जनता से धन एकत्रित करने की जबर्दस्त सम्भावनाओं के सम्बन्ध में बड़े निराशाजनक अनुमान लगाये थे, मेरा दृष्टिकोण इनके विपरीत है। मेरे इस विचार की पुष्टि इस बात से हो गई है कि राज्य द्वारा माँगे गये कर्जों की पूर्ति सीमा से अधिक थोड़े ही समय में हो गई। ज्यादातर कर्ज उन लोगों से मिला है, जिन्होंने १,००० रु० या इससे

कम रकम दी है। मैं समझता हूँ कि यदि सही तरीके से और उप-युक्त वातावरण में कार्य बढ़ाया जाय तो योजना काल में ३०० से ४०० करोड़ रु० तक प्राप्त कर लेना कठिन न होगा। मैंने अप्रैल १९५४ में प्रधान मंत्री को इस सम्बन्ध में जो बात लिखी थी, उसे उद्धृत कर देना पर्याप्त होगा। मैंने लिखा था कि "मैं अनुभव करता हूँ कि देश में पर्याप्त धन है। यदि जनता से सही तरीके से माँग की जाय तो वह राष्ट्रीय खजाने में आ सकता है। अब तक लगातार सभी वित्त मन्त्रियों ने केवल एक वर्ग को सुविधाएँ इस आशा में दी हैं कि उससे पूँजी के निर्माण में मदद मिलेगी, लेकिन प्रतिफल बहुत कम निकला है। इस बात की आवश्यकता है कि बड़ी होशियारी से जाँच-पड़ताल की जाय कि किस तबके के पास फालतू धन है और किन परिस्थितियों में वे सरकारी कर्जों में उसे लगाने के लिए प्रेरित किये जा सकते हैं। मोटे तौर से कहा जाय तो निम्न-लिखित श्रेणी के लोगों से विशेष रूप से रुपया प्राप्त करने का प्रयास किया जा सकता है:—

१. राजा लोग।
२. वेतन प्राप्त कर्मचारी।
३. किसान।
४. चोर बाजारी की कमाई का रुपया रखने वाले लोग।

मेरा सदा यह दृष्टिकोण रहा है कि राजाओं से काफी तादाद में रुपया प्राप्त किया जा सकता है, यदि उनके सम्मुख विशेष शर्तें प्रस्तुत की जायें, जैसा कि अंग्रेजी शासन में होता था इसी प्रकार वेतन प्राप्त लोगों से और मध्यवर्गीय लोगों से काफी रकम प्राप्त की जा सकती है, यदि मकान बनाने के सम्बन्ध में उन्हें प्रोत्साहन दिया जाय।

किन्तु वित्त मन्त्री निश्चित रूप से इस बात के विरुद्ध हैं कि कोई धन मकान बनाने के कार्य में खर्च किया जाय। मैं आप से पूछना चाहता हूँ कि जब स्पष्ट कारणों से धन उद्योग में लगाने के लिए नहीं आ रहा है तो क्या यह बुद्धिमानी की और आर्थिक रूप से ठोस बात नहीं होगी कि उसे मकानों में लगाने की अनुमति दे दी जाय? इससे न सिर्फ रोजगार देने की संख्या में ही वृद्धि होगी, अपितु इससे मकान निर्माण और इसके सहयोगी उद्योगों को भी मदद मिलेगी।

इसी प्रकार किसानों को भी अपनी बचत लगाने के लिए उत्साहित किया जा सकता है, यदि छोटी बचत योजनाएँ बनाई जायें और इस प्रकार कार्यान्वित की जायें कि किसानों को भरोसा हो जाय कि यह एक-त्रित धन कृषि विकास और कुटीर उद्योगों में खर्च किया जायगा।

चोरबाजारी से कमाया गया धन गुप्त हो गया है और उसका उपयोग असामाजिक कार्यों में किया जाता है। आय कर आयोग की नियुक्ति के समय इस गुप्त धन का अनुमान ५०० करोड़ रु० लगाया गया था। आयोग की हाल की रिपोर्ट से पता लगता है कि गत ६ वर्षों में आयोग ने ४०.३२ करोड़ रु० का निपटारा कर लिया है। आयोग के कार्य से और उसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर गौर करने से मालूम होता है कि गुप्त धन ७५ करोड़ रु० से अधिक न निकल सकेगा। इससे जाहिर है कि ३०० से ४०० करोड़ रु० अब भी गुप्त पड़ा रहेगा। इस रुपये को निकालने के लिए मैंने १९४९ में सुझाव दिया था कि ३५ प्रतिशत प्रीमियम पर पुनर्स्थापि कार्य के लिए बेअरर बौण्ड जारी किये जायें। व्यापारिक जगत से सम्बन्ध रखने वाले लोगों ने मुझे बताया था कि करीब १५०-२०० करोड़ रु० इनमें लगा दिये जायेंगे, यदि यह माकूल आश्वासन दे दिया जाय कि इस लगाये गये रुपये के सम्बन्ध में कोई खिलाफ कार्रवाई न की जायगी। लेकिन इस सुझाव को केवल इस कारण स्वीकार नहीं किया गया कि आयोग की नियुक्ति के बाद यदि सरकार इस प्रकार का कोई कदम उठाती तो उसके गलत अर्थ लगाये जा सकते हैं। पर तब से अब स्थिति बदल गई है, अतः मैं एक बार फिर सुझाव देता हूँ कि निश्चित प्रीमियम पर बेअरर बौण्ड जारी करने के न्यायसंगत प्रश्न पर विचार किया जाय।

सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैं समझता हूँ कि इन श्रेणियों के लोगों से ५०० या ६०० करोड़ रु० अगले दो वर्षों में राष्ट्रीय विकास कार्य के लिए इकट्ठा हो जाना मुश्किल न होगा।

इसके साथ ही सामान्य तरीकों से प्राप्त रुपया मिला कर दो वर्षों में राष्ट्रीय विकास कर्ज के लिए १००० करोड़ रु० हो जाता है। हाँ, इसके लिए दो शर्तें हैं। पहली बात यह कि कर्ज के लिए शर्तें निर्धारित करते समय हमें बैंक वालों की मनोवृत्ति को तिलांजलि देनी होगी। इससे भी अधिक सावधानी हमें इस प्रकार प्राप्त हुए रुपये को खर्च करने की मर्दें निर्धारित करते समय अकाउण्टेंट वाली प्रवृत्ति से बचने में बरतनी पड़ेगी। हमें अपनी निजी पूर्व धारणाओं और रुझानों से ऊपर उठना होगा और विकास के लिए स्कीमों को बनाते समय दूरन्देशी का दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि हमें मितव्ययिता, निस्वार्थ कार्य और करो या मरो वाली दृढ़ता का वातावरण बनाना पड़ेगा, ताकि लोगों के मस्तिष्क पर पड़ी छाप को दूर किया जा सके। कुछ तो निन्दकों के

अनिष्टकर प्रचार के कारण और कुछ अपनी पूर्व घोषणाओं और वर्तमान व्यवहार के बीच विरोध होने के कारण जनता में हम कांग्रेसजनों के प्रति धारणा बन गई है कि हमने निस्वार्थ सेवा और त्याग का पथ त्याग दिया है एवं इसके विपरीत आत्म-प्रतिष्ठा बढ़ाने और आत्म-वृत्ति करने का मार्ग अपना लिया है। अगले २-३ वर्ष अनिवार्य रूप से फसलाकुन होंगे, मैं कामना करता हूँ कि हमें पर्याप्त शक्ति व बुद्धि मिले ताकि हम परिस्थिति का मुकाबला कर सकें और निस्वार्थ कार्य और त्याग की अपनी पिछली सीमाओं से भी अधिक कार्य करके दिखा सकें।”

उस समय मैंने श्री नेहरू को जो बात लिखी थी, वह आज और भी जोर से लागू होती है। यहाँ तक कि अर्थशास्त्रियों के मण्डल ने भी मितव्ययिता की आवश्यकता पर जोर दिया है। उन्होंने कहा है, “द्वितीय पंचवर्षीय योजना राष्ट्र के लिए एक चैलेंज है। इसके लिए आवश्यकता है कि अधिकाधिक निरन्तर प्रयास किये जायें—ये प्रयास बड़े और संगठित पैमाने पर हों। इसके लिए न केवल उन लोगों के लिए मितव्ययिता की आवश्यकता है जिनकी आय अधिक है, लेकिन उन लोगों के लिए भी आवश्यकता है जिनकी आय इतनी अधिक नहीं है।” अतएव योजना की सफलता इसीमें निहित है कि मितव्ययिता को अपनाया जाय—सोचना यही है कि इसे कैसे किया जाय। यह कार्य भाषणों, समाचार पत्रों के वक्तव्यों, अपीलों और प्रस्तावों अथवा तूफानी प्रचार और सम्मेलनों से नहीं होगा।

गांधीजी ने आदर्श प्रस्तुत कर शिक्षा दी थी, आदेश नहीं दिये थे, उन्होंने करके दिखलाया था लफ्फाजी नहीं की थी, उन्होंने कहा—जनता में विश्वास करो और उसके हृदय में घुस जाओ। जब उन्होंने खादी आन्दोलन किया तो उन्होंने केवल यह नहीं कहा कि विदेशी कपड़ों की होली जला दो, उन्होंने हाथ के बुने अपने कपड़े भी त्याग दिये और शपथ ली की जब तक लोगों की जरूरत पूरी करने लायक खदर नहीं बनने लगता, तब तक मैं केवल लँगोटी ही लगाऊँगा। जब उन्होंने नमक सत्याग्रह किया तो शपथ ली कि जब तक स्वराज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, मैं साबरमती आश्रम में न लौटूँगा। इसके बाद जब उन्होंने छूआछूत-विरोधी आन्दोलन छेड़ा तो उन्होंने एक अछूत कन्या को गोद लिया और भंगी कौलोनी में रहने का निश्चय किया। नई दिल्ली के बिड़ला भवन के आतिथ्य को उन्होंने ठुकरा दिया। इसे हम बीते हुए समय की पद्धति कह कर अमान्य नहीं कर सकते। ये हमारी जनता की बुद्ध और अशोक के समय से अनुप्राणित करती रही है। आज भी भूदान आन्दोलन केवल

इसी रीति-नीति को अपना कर ही इतनी जबर्दस्त सफलता प्राप्त कर सका है। हमारे शास्त्रों का कथन है कि समाज अपने प्रमुख व्यक्तियों के पद-चिह्नों का अनुकरण करता है। अतएव, यदि जनता से आशा की जाती है कि वह मितव्ययिता को अपनाये तो जो जनता के अग्रणी हैं, उन्हें आदर्श प्रस्तुत करना होगा। आज जनता की नजर में जो व्यक्ति सबसे पहले चढ़ते हैं, वे ये हैं :—

- | | |
|-------------------------|--------------------|
| १. राज्यपाल | २. मंत्रिगण |
| ३. विधान सभाओं के सदस्य | ४. सरकारी कर्मचारी |
| ५. सामाजिक कार्यकर्ता | ६. कांग्रेस जन |

राज्यपाल—हो सकता है कि संविधान की रचना के समय गवर्नर के पद में कुछ औचित्य रहा हो, पर उनके क्रिया-कलाप से प्रतीत हुआ है कि हमारी राजनीतिक व्यवस्था में उनका कोई स्थान नहीं है। इन्हे तो गवर्नर जनरल के साथ ही खत्म हो जाना चाहिए था। राज्यपालों के कारण अनाप-शनाप खर्च होता है, जिसके कारण करोड़ों रुपये का बोझ करदाता के ऊपर पड़ता है। हम जिस मसाज-वादी ढंग की समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए सन्नद्ध हैं, उसके लिए तो यह पद अभिशाप है। इसे खत्म करना उपयुक्त ही होगा। जरूरत इस बात की है कि राजभवनों को बालभवनों और सेनेटोरियमों में परिवर्तित कर दिया जाय। यदि किसी कारणवश यह करना सम्भव न हो, तो राज्यपालों को स्वतः आगे आकर जनता के सामने आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। उन्हें अत्यन्त खर्चीले तामझाम में कटौती कर देनी चाहिए और अपने निजी भत्ते कम करके कर जाँच आयोग की इस सिफारिश को स्वीकार कर लेना चाहिए कि निजी आय को सीमा निश्चित कर दी जाय और वह देश के औसत परिवार की आय की ३० गुनी से अधिक न हो।

मंत्रिगण—अपनी अधिक संख्या एवं कार्य दोनों के कारण दूसरों की तुलना में ये जनता की आँखों के सामने सबसे अधिक आते हैं। और इस प्रकार इनका निजी जीवन और चरित्र जनता के जीवन और विचारों को नये साँचे में ढालने के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। मुझे विश्वास है कि इनमें से अधिकांश अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक हैं, अतएव मैं उन्हें यह बताना जरूरी नहीं समझता कि तब तक जनता से मितव्ययिता की आशा करना व्यर्थ है, जब तक ये खुद सादा रहन-सहन और उच्च विचार का जीवित आदर्श प्रस्तुत नहीं करते। बहरहाल, मैं इस बात का उल्लेख कर दूँ कि मंत्रियों और उपमंत्रियों

की संख्या राज्यों के क्षेत्रफल और वित्तीय साधनों का बिना ख्याल किये कम और ज्यादा है। मेरी अपनी राय तो यह है कि राज्य में १ दर्जन से अधिक और केन्द्र में २ दर्जन से अधिक मंत्रियों और उपमंत्रियों की नियुक्ति उचित नहीं है। दूसरी बात यह है कि मंत्रियों के ऊपर अति व्यय तो होता ही है, इसलिए मेरी राय यह है कि मंत्रिगण अपना पूरा समय राज्य के कार्यों में लगायें और पदके अतिरिक्त अन्य कामों को बिलकुल न्यून कर दें। क्योंकि मुझे आशंका है कि अपने कार्य की प्रत्येक छोटी-मोटी बात को समझे बिना वह अपने कर्तव्य को प्रभावशाली ढंग से पूरा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, चूँकि मंत्रिमण्डल का कार्य सामूहिक जिम्मेदारी का है, यह आवश्यक है कि वह दूसरे विभागों को भी देखें-समझें। इन सब कार्यों के बाद उनके पास मंत्रिपद के कार्य के अलावा और कुछ करने का समय ही न रहेगा। यदि फिर भी वे अन्य कामों में उलभते हैं तो यह वे अपनी नियमानुकूल और नैतिक जिम्मेदारी की अवहेलना करके ही करते हैं।

मैं यह भी सुभाव दे दूँ कि मितव्ययिता और कुशलता के हितार्थ एवं सफल योजना के उद्देश्य से भी यह वांछनीय है कि अ और ब राज्यों के मुख्य मन्त्री बिना विभाग के मन्त्री हों।

विधान सभाओं के सदस्य—इनकी संख्या हजारों है और ये पूरे देश में फैले हुए हैं—इनमें से अधिकांश जन कार्यकर्ता रहे हैं और जनता के बीच में से ही ये आये हैं। इनका उदाहरण सही मानी में संक्रामक होता है। अतएव ये जो कुछ भी कहें या करें उसके सम्बन्ध में इन्हें बहुत सर्तक रहने की आवश्यकता है। ये योजना को अमल में लाने के लिए अपेक्षित वातावरण तैयार करने में बहुत मददगार सिद्ध हो सकते हैं। किसी भी दृष्टि से इन्हें ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे इसकी प्रगति में रुकावट आये।

सरकारी कर्मचारी—यद्यपि नाम के ये कर्मचारी हैं, पर ये जनता के भाग्य को बना या बिगाड़ सकते हैं और देश की प्रगति को गति दे सकते हैं या उसमें बाधक सिद्ध हो सकते हैं। सरकारी नीतियों को सफलता से लागू करने की जिम्मेदारी कर्मचारियों के वफादार सहयोग पर निर्भर है। दुर्भाग्य की बात यह है कि आज सब से ऊँचे पदों पर वे लोग हैं जो राष्ट्रीय आन्दोलन से बिलकुल ही अलग रहे। जब गांधी जी ने १९२० में विद्यार्थियों से असहयोग आन्दोलन में आने की माँग की, तब ये स्कूलों और कालेजों में पढ़ते रहे। १९३० में जब गांधी जी ने सरकारी कर्मचारियों से असहयोग आन्दोलन में आने की माँग की तो ये

अपनी कुर्सियों से चिपके रहे । और जब गांधी जी द्वारा छेड़े गये “भारत छोड़ो” आन्दोलन में हजारों देशवासियों ने बड़ी वीरता के साथ हर प्रकार के कष्टों का सामना किया, तब ये अंग्रेजों से सहयोग करते रहे । स्वतन्त्रता के बाद इन्होंने अपनी माँग बेझिझक रख दी और अपनी तनखाह व भत्ते संविधान के अन्तर्गत सुरक्षित करा लिये ।

इन चीजों से पता लगता है कि उनका मस्तिष्क किस प्रकार कार्य करता है, उन्हें उस समय भी जनता के नेताओं पर भरोसा न था । उन्हें इस बात का ख्याल था कि उनके कुछ भत्ते पूरी तरह नाजायज हैं और हमारे कुछ जिम्मेदार नेताओं ने उन्हें ‘ले लूट’ कहा था, लेकिन इसके साथ ही उन्हें प्रधान मंत्री के इस लेख का ख्याल था, जिसमें उन्होंने इन्हें विदेशी शासकों की लौह अनुकृति लिखा था और लिखा था कि कांग्रेस मंत्रिमण्डलों के प्रगतिशील कदमों में ये किस प्रकार बाधा डालते हैं । मैंने इन सब बातों की इसलिए याद नहीं दिलाई है कि मैं एक ही ब्रुश से स्याही फेर देना चाहता हूँ । उनमें से बहुत से ऐसे भी हो सकते हैं जिन्होंने परिस्थियों के थपेड़े खाये हों और कुछ परिवर्तन के साथ खुद भी बदल गये हों । लेकिन मानव प्रकृति बहुत कम बदलती है, अतएव हमें अफसरों का चयन करते समय बड़ी होशियारी बरतने की आवश्यकता है, कम से कम मौके की जगहों के लिए, जबकि खतरों की कोई कमी नहीं है । मैंने पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में दिसम्बर १९५२ में प्रधान मंत्री को लिखे गये खत में लिखा था :—

“मौजूदा शासकीय ढाँचा एक कल्याणकारी राज्य के उपयुक्त नहीं है और मुझे आशंका है कि यदि इसमें आधारभूत परिवर्तन न हुए तो कल्याणकारी राज्य द्वारा प्रदत्त जिम्मेदारियों को यह वहन नहीं कर सकेगा । मैंने इस सम्बन्ध में सुझाव पहले ही दिये हैं । मैं एक बात को और आपका ध्यान फिर दिलाना चाहता हूँ कि केन्द्रिय सरकार के अधिकांश कर्मचारी बदली हुई परिस्थिति से परिचित नहीं हैं, और देश में होने वाले परिवर्तनों से उनकी जानकारी होना अत्यन्त जरूरी है, अतः समय-समय पर उन्हें बदल कर राज्यों में भेज दिया जाया करे ।..... ब्रिटेन की समानता इस सम्बन्ध में भारत से नहीं हो सकती । हमारा देश ब्रिटेन से बहुत बड़ा है, जिसकी समस्याएँ राज्य-राज्य में अलग-अलग हैं । साथ ही दिल्ली लन्दन नहीं है, जहाँ से ब्रिटेन के हर भाग से सम्पर्क रखना आसान हो । मेरा यह भी सुझाव

है कि किसी फर्म या फैक्टरी में उन्हें वर्ष में १५ दिन रखा जाय । इससे उनकी जानकारी और कुशलता में वृद्धि होगी ।.....मेरा यह भी दृष्टिकोण है कि केन्द्र के लिए अफसरों का चुनाव करते समय इस बात की सावधानी बरती जाय कि ऐसे ही अफसर हों जो हमारी नीति से इत्तिफाक रखते हों । बताया जाता है कि कुछ अफसर स्थानिक क्लबों में हमारी नीति और मंत्रियों के बारे में इस ढंग से बात करते हैं जो वांछनीय नहीं है । इस चीज के खात्मे के लिए कुछ न कुछ अवश्य किया जाना चाहिए ।”

इस सम्बन्ध में मै प्रो० महालनोबिस के योजना मसविदे (अध्याय ६, पैरा २४) का यह अंश अपने कथन के समर्थन में उद्धृत करता हूँ, “वर्तमान सरकार की मशीन में शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी जो कठिनाइयाँ विद्यमान हैं, उनसे कार्यकुशल योजना के मार्ग में जबर्दस्त बाधाएँ हैं । इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर संगठनात्मक और वैधानिक परिवर्तनों की भी आवश्यकता हो जायगी । यह समस्या जरूरी है और इस पर अविलम्ब और गम्भीर विचार आवश्यक है ।”

सामाजिक कार्यकर्ता—जनता के कार्य का मुझे जो थोड़ा अनुभव है, उसके आधार पर मैं समझता हूँ कि कार्यकर्ताओं का जनता पर तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जब तक कार्य करने में वे त्याग की भावना का परिचय नहीं देते । सही मानी में सामाजिक कार्यकर्ता के लिए हमारे सामने रामकृष्ण मिशन का आदर्श मौजूद है, हम विदेशी मिशनों की ओर क्यों देखें ! यहाँ सामाजिक और मिशनरी कार्य का संगठन किसी भी अन्य प्रकार की सेवा के रूप में ही होता है । मैं समझता हूँ कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना में सामाजिक सेवा कार्य के लिए २० करोड़ रु० व्यय किया जायगा । अतएव मैं बहुत जोरों के साथ दख्खास्त करता हूँ कि वेतन और यात्रा भत्ते में बहुत कम धन व्यय किया जाय । क्योंकि समाज-कल्याण बोर्ड या इसके अन्तर्गत किसी भी संस्था में ऊँची-ऊँची तनखा वाले अधिकारी हुए और अन्य सरकारी अफसरों की भाँति घूमने-फिरने लगे तो उनकी जोरदार भर्त्सना होगी, क्योंकि इससे उद्देश्य का ही खात्मा हो जायगा । सामाजिक कार्य छोटे और बड़े पैमाने पर स्वयं-सेवकों के द्वारा ही किया जायगा—इनमें अवकाश प्राप्त लोग होंगे या

वे लोग होंगे जो कहीं दूसरी जगह कार्य करते हैं और अपना कुछ समय इस काम में लगाते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता बड़ी सीमा तक मितव्ययिता और सामाजिक सेवा का वातावरण बनाने में योग दे सकते हैं, यह कार्य वेतन प्राप्त कार्यकर्ताओं द्वारा किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

कांग्रेस जन—यद्यपि कांग्रेस संगठन और कांग्रेस जनों में खामियाँ मौजूद हैं, किन्तु लोग अब भी अपने उत्थान के लिए उनकी ओर आशा और विश्वास से देखते हैं। मुझे इसमें शंका नहीं कि अगले चुनावों में केन्द्र व राज्यों में कांग्रेस को ही सफलता मिलेगी, हाँ सम्भवतः उतना बहुमत न मिले। लेकिन इससे हमें इस गलतफहमी में न पड़ जाना चाहिए कि हम मान लें कि योजना के लागू करने में जनता का समर्थन और सहयोग प्राप्त हो ही जायगा। चूँकि और कोई संगठित पार्टी नहीं है जिसका शक्तिशाली नेतृत्व और अनुशासनबद्ध अनुगामी हों, अतः वे कांग्रेस को वोट दे सकते हैं; लेकिन उनके सक्रिय सहयोग और समर्थन के हम तभी हकदार हो सकते हैं, जब हम अपने में आई हुई बुराइयों से छुटकारा प्राप्त कर लें और अपने निस्वार्थ सेवा और त्याग के पूर्व सिद्धान्तों पर अडिग हो जायें। हमें जनता के आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए और भी अधिक प्रयास करने होंगे तथा और भी अधिक अनुशासित व महनत का काम करना होगा। कांग्रेस को विभिन्न क्षेत्रों में जो सफलता प्राप्त हुई है, उसका श्रेय उन हजारों कांग्रेस कार्यकर्ताओं के साहसिक प्रयासों और निरन्तर कार्य को है, जो सूक्ष्म सेवा-कार्य में प्रवृत्त रहे हैं और कांग्रेस को चलाने के लिए कष्ट भोगते रहे हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि उनमें से अधिकांश की अब कोई पृष्ठ भी नहीं है और उनके आश्रितों की ठीक प्रकार से देखभाल भी नहीं हो पाती। योजना को सफल बनाने के हेतु देशव्यापी प्रयास का संगठन करने के लिए यह आवश्यक है कि कांग्रेस संगठन का भी परिष्कार किया जाय, ताकि वह इस महान् जिम्मेदारी को अपने आप में समर्थ हो एवं कार्यकर्ताओं को भी इस मुताबिक प्रशिक्षित और साज-सज्जा से दुरुस्त कर दिया जाय कि वे कार्य को जोश-खरोश से कर सकें।

जन-सहयोग—योजना को पूरा करने के लिए जनता के पूरे-पूरे सहयोग और समर्थन की आवश्यकता को समझा जा रहा है और इस सम्बन्ध में प्रभावशाली अपीलें भी प्रचारित की जा रही हैं, लेकिन मुझे दुःख है कि उनमें अभी पर्याप्त उत्साह पैदा नहीं किया जा सका है। यदि योजना को सफलता के साथ पूरा करना है, तो जनता की अन्यमनस्कता के कारणों को होशियारी से जाँचने की और

उनका उपचार करने की जरूरत है। मेरे विचार से इसका एक कारण तो यह है कि जनता से सहयोग के लिए अस्पष्ट और आम अपीलें की जाती हैं, लोगों को निश्चित रूप से ये नहीं बताया जाता कि वे कैसे सहयोग कर सकते हैं। चूँकि अलग-अलग श्रेणियों के लोग अलग-अलग तरीके से सहयोग कर सकते हैं, अतएव यह आवश्यक हो जाता है कि योजना आयोग एक निर्देशिका प्रचारित करे, जिसमें मोटे रूप से विभिन्न कार्यों और उनके ढंग के बारे में बताया जाय कि अलग-अलग श्रेणी के लोग उनमें अपना सहयोग किस प्रकार दे सकते हैं। नये भारत के निर्माण में हमें प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग लेने की आवश्यकता है; किसी भी श्रेणी के लोगों को यह महसूस न होना चाहिए कि हमारी परवा नहीँ की गई।

उदाहरणार्थ, राजाओं के पास धन और साधन मौजूद हैं। उनमें से कुछ योग्य और देशभक्त हैं। मेरा विचार है कि कुछ राजाओं के साथ विचार-विनिमय कर एक ऐसी योजना का निर्माण हो सकता है, जिसे उनका समर्थन, सहयोग और शासकीय अनुभव प्राप्त हो जाय। उनके जेबखर्च की रकम का एक भाग ही प्राप्त न होगा, बल्कि योजना की पूर्ति के लिए उनके वित्तीय साधन भी उपलब्ध हो सकते हैं।

इस समय भारत सेवक समाज ही सरकार द्वारा निर्मित ऐसी गैर-सरकारी संस्था है, जिससे आशा की जाती है कि वह जनता के सहयोग को जगा सकती है। प्रारम्भ से ही मेरा दृष्टिकोण यह रहा है कि इस संस्था को रचनात्मक और सामाजिक कार्य में प्रवृत्त एवं नई बनने वाली समान संस्थाओं का फैडरेशन होना चाहिए। मुझे यह विचार उचित नहीं लगा कि इसकी सीधी सदस्यता हो और प्रधान मन्त्री इसके अध्यक्ष हों—इसके क्या कारण हैं, उन्हें मैं बताना जरूरी नहीं समझता। मुझे बताया गया है कि कुछ बहुत ही प्रसिद्ध संस्थाएँ जो रचनात्मक कार्यों में संलग्न हैं, भारत सेवक समाज से मिल कर काम करने को उद्यत नहीं हैं। मैं यह नहीं जानता कि इसके क्या कारण हैं, लेकिन मैं यह ख्याल करता हूँ कि उनका सहयोग प्राप्त करना आवश्यक है, क्योंकि इससे समाज का कार्य ही आगे नहीं बढ़ेगा, अपितु इससे जनता में इसकी मर्यादा भी ऊँची होगी। यदि आवश्यकता हो तो समाज के विभिन्न कार्यों को करने के लिए विभिन्न संस्थाएँ बन जायें और उनमें नवागन्तुकों को सदस्य बनने की सलाह दी जाय, समाज के सदस्य बनने की अपेक्षा यह अधिक उचित है। इस समय

सदस्य बनने पर कोई रोक-थाम नहीं है, अतएव अवांछनीय लोगों को अलग रखना सम्भव नहीं है। प्रो० महालनोबिस का भी कथन है कि सरकार योजना के पक्ष में जन सहयोग को संगठित करे और गैर-सरकारी संगठनों को इसे पूरा करने में कार्य करने के लिए सहायता करे। इसका यही तात्पर्य है कि नियोजक इसे खुद महसूस करते हैं कि भारत सेवक समाज जिस प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति के लिए शुरू किया गया था उसमें यानी जनता का आवश्यक सहयोग और समर्थन प्रदान कराने के कार्य में असफल रहा है।

भ्रष्टाचार—प्रथम पंचवर्षीय योजना में ६ पैरे ईमानदारी के विषय से सम्बन्धित हैं यानी शासन-प्रबन्ध में इसकी कमी का उल्लेख किया गया है और भ्रष्टाचार को खत्म करने के कई तरीके बताये गये हैं। मैं यहाँ केवल प्रारम्भिक पैरे को उद्धृत कर रहा हूँ :—

“सार्वजनिक मामलों और शासन-प्रबन्ध के लिए ईमानदारी अत्यन्त आवश्यक है और इसलिए इसका पालन करने के लिए पूरा जोर दिया जाना चाहिए। भ्रष्टाचार का प्रभाव भीतरी काट करने वाला है। इसके कारण खामियाँ ही पैदा नहीं होतीं, जिनका निराकरण कठिन हो जाता है, किन्तु इसके कारण शासकीय ढाँचा भी हीन हो जाता है और जनता का विश्वास भी शासन के प्रति डिग जाता है। अतएव हर प्रकार के भ्रष्टाचार को शासन में से और आम तौर से सार्वजनिक जीवन से निकाल फेंकने के लिए निरन्तर संघर्ष की आवश्यकता है। यह जरूरी है कि इस बुराई के विरुद्ध निरन्तर सतर्क रहा जाय।”

मैं समझता हूँ कि इस समस्या का इस से बहतर मूल्यांकन नहीं हो सकता और इसलिए जैसा कि इस अभिशाप के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष की घोषणा की गई थी, उससे आशा थी कि इस पर जबर्दस्त आघात होगा और कम से कम इतना तो होगा कि नये कर्मचारी इस बुराई से बचे रहेंगे। यद्यपि बाद की रिपोर्टें इस संघर्ष के फल के सम्बन्ध में चुप्पी लगा गई हैं और इस बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है कि भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाने के लिए क्या तरीके अपनाये गये, किन्तु इतना निस्संकोच माना जा सकता है कि नतीजे सन्तोषजनक किसी भी हालत में नहीं हैं। मुझे विश्वस्त रूप से बताया गया है कि यद्यपि पटवारियों की जगह लेखपालों ने ले ली है, किन्तु भ्रष्टाचार जारी है और उसने और भी बुरे रूप अपना लिये हैं।

मैंने प्रथम योजना के प्रकाशन के बाद दिसम्बर १९५२ में प्रधान मंत्री को लिखा था :—

“जहाँ तक भ्रष्टाचार का सवाल है आयोग ने कुछ तरीके बताये हैं, किन्तु मैं नहीं समझता कि ये दूर व्यापी हैं और इनसे परिस्थिति की आवश्यकता की पूर्ति होती है। मेरा अब भी यही मत है कि हमें एक भ्रष्टाचार-विरोधी आयोग की स्थापना करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में मैंने आपको अनेकों बार लिखा है। यदि उसे व्यावहारिक नहीं माना गया तो किसी और उपचार का विधान किया जाना चाहिए। यदि हम कोई ऐसी नियमित योजना बनाने में समर्थ नहीं हैं कि जिससे ५ वर्षों में भी भ्रष्टाचार का खात्मा किया जा सके तो हम जनता को उत्साहित करने में समर्थन न हो सकेंगे। क्योंकि जब लोग देखते हैं कि ५ वर्ष के शासन के बाद भी हम पुलिस और रेलवे में से भ्रष्टाचार उखाड़ फेंकने में असमर्थ हुए हैं तो वे हमारी और अधिक कार्य करने की क्षमता के प्रति कुछ अविश्वासी हो जाते हैं।”

मेरी ये आशंकाएँ सत्य सिद्ध हुई हैं, किन्तु मुझे इससे सन्तोष नहीं होता। मैंने जो बात उस समय कही थी, अब भी उसी की पुष्टि कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि इस दिशा में कोई निर्णयारम्भक कदम उठाये जायेंगे।

उदाहरणार्थ, मैंने नवम्बर १९४८ में प्रत्येक मंत्रालय के लिए एक निगरानी समिति की स्थापना का सुझाव दिया था, जो स्टाफ के कर्मचारियों पर सतर्क दृष्टि रखे। यदि उन्हें न्याययुक्त नैतिक विश्वास हो जाता है कि अमुक अफसर या अन्य कर्मचारी सच्चा नहीं है तो उसकी सेवाएँ उसी समय समाप्त कर दी जायें, भले ही कानूनी सबूत प्राप्त न हो सकते हों।

जब तक हम कर्मचारियों को यह न समझा दें कि हम काम चाहते हैं और हमारा सबसे ज्यादा जोर ईमानदारी पर है—भले ही उसकी कितनी भी योग्यता हो, पर भ्रष्टाचार को किसी भी मूल्य पर बर्दाश्त नहीं करेंगे—तब तक अवस्था में सुधार होना नामुमकिन है।

आँकड़े—अन्त में मैं योजना के प्रति आँकड़ों को लेकर अपनाये जाने वाले दृष्टिकोण के सम्बन्ध में कुछ कहूँगा। आमतौर से इसके सम्बन्ध में किसी को एतराज नहीं हो सकता। लेकिन यह जानते

हुए कि हमारे आँकड़े कितने अविश्वसीय हैं, उन्हें किस प्रकार इकट्ठा किया जाता है और गढ़ा जाता है, किस प्रकार एक अफसर एक मंत्रालय को एक प्रकार के आँकड़े और दूसरे मंत्रालय को दूसरी प्रकार के आँकड़े देता है और यह दावा करने की जुर्रत करता है कि दोनों सही हैं—इस सम्बन्ध में मैं और क्या कहूँ, कड़ी चेतावनी ही देता हूँ ।

योजना में जो वस्तुस्थिति और अङ्कों के सम्बन्ध में कुछ मंतव्य व्यक्त किये गये हैं, योजना आयोग ने उनको गलत बताया है और उनका खण्डन भी किया है । हमें अहिस्ता से बताया गया था कि वे उन आँकड़ों पर आधारित हैं जो नमूने की जाँच-पड़ताल के बाद प्राप्त हुए हैं । लेकिन हर व्यक्ति पूछने का हकदार है कि जब योजना के मसविदे के अंकों और योजना आयोग के अंकों में इतना जबर्दस्त अन्तर है, तो फिर उन्हें योजना आयोग के अधिकार से क्यों प्रकाशित कराया गया ? बहरहाल, हमें इससे चेतावनी मिलती है कि भारत इतना विशाल देश है और स्थितियों में इतना अन्तर है कि एक राज्य के मामले में भी हमें नमूने की जाँच-पड़ताल पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए । उन देशों में भी जहाँ दसियों वर्षों से वैज्ञानिक आधार पर नियमित रूप से आँकड़े एकत्रित होते रहते हैं, वहाँ भूलों के लिए छूट होती है, जिन्हें वैज्ञानिक आधार पर तैयार कर लिया जाता है । प्रो० महालनो-बिस के प्रति और उनके संगठन के प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करते हुए भी मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि दूसरी पंचवर्षीय योजना के लिए अंक, वे किस तरीके से एकत्रित किये गये इससे फर्क नहीं पड़ता, हमारे सुभावों को तैयार करने में निर्विघ्न मार्ग-प्रदर्शक नहीं हो सकते ।

निष्कर्ष—मैंने योजना के मसविदे के सम्बन्ध में अपनी शंकाओं और धारणाओं को लेख माला के रूप में व्यक्त किया है । मैंने कुछ सुभाव भी दिये हैं, मैं नहीं कहता कि वे मौलिक हैं और पूर्ण हैं । मैं खुश होऊँगा यदि मेरी शंकाएँ और आशंकाएँ गलत सिद्ध होती हैं । जहाँ तक सुभावों का सवाल है, उनसे यदि उपयुक्त दिशा में सोचने के लिए प्रेरणा मिल सकी तो मैं समझूँगा कि उनका उद्देश्य पूरा हो गया । यदि सुभावों को स्वीकार किया गया तो योजना को दूसरी दिशा मिलेगी और तब हमारी विकास योजना में वित्त एक बड़ी रुकावट होकर न रह जायगा ।

मैं यह अनुभव करता हूँ कि लेख कुछ लम्बे हो गये हैं । उनके प्रकाशन में समाचार पत्रों को सीमित स्थान होने के कारण असुविधा हुई होगी और हमारे अत्यधिक संलग्न मंत्रियों को भी इन्हें पढ़ने के लिए समय निकालने में दिक्कत हुई होगी । मैं असुविधा के लिए क्षमा चाहता

हैं। दो कारणों से ये लम्बे हो गये। पहली बात यह कि अभिव्यक्ति में संक्षिप्त होने के लिए भाषा पर अधिकार और लिखने के निश्चित कौशल की जरूरत होती है, मुझे इन दोनों का ही अभाव है। दूसरी बात यह है कि मुझे अपने सुभाव रखने के साथ-साथ कुछ मान्य धारणाओं का भी खण्डन करना था और सम्भावित एतराजों का सामना करना था ताकि निगरानी में ही इन्हें अमान्य न कर दिया जाय। पहले जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसका भी उल्लेख जरूरी था, ताकि यह प्रकट हो सके कि मेरे विचार किस प्रकार कुछ वर्षों से कार्य कर रहे हैं और ये सुभाव लगे हाथों तैयार नहीं हो गये।

संक्षेप में, मेरे विचारों का सार यह है :—

निश्चित लक्ष्य तथा दृढ़ और स्पष्ट नीति अपनाइए। योजना नमनीय हो और समयानुकूल वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किये जायें। अगले दो वर्षों में मेरी कार्य नीति यह होगी कि शासन को चुस्त बनाया जाय, हर प्रकार के अपव्ययवधन की बर्बादी को खत्म किया जाय एवं उसे अतिरिक्त जिम्मेदारी को वहन करने के लिए तैयार किया जाय। गरीबों की मदद के लिए अमीरों से धन लिया जाय। आशाइस की चीजों पर कर लगे और जरूरत की चीजें कर-मुक्त हों। प्रत्येक समर्थ बालिग पुरुष को काम में लगाया जाय या योजना के लिए श्रम देने को कहा जाय। उत्पादन में वृद्धि की जाय और कुटीर व लघु उद्योगों का विकास कर रोजगार दिये जायें—यह हमारी अर्थ व्यवस्था का आवश्यक अंग हो। निष्क्रिय लोगों को सक्रिय बनाया जाय और आत्म सहायता व परस्पर सहायता स्कीमों के द्वारा उनके समय व श्रम को सत् सामाजिक उपयोग में लगाया जाय। इन सब बातों से आगे जनता में राष्ट्रीय दृष्टिकोण और एकता की समझ फैली जाय, साथ ही निस्वार्थ सेवा और सहयोग की नई चेतना पैदा की जाय। देश भर में मितव्ययिता का वातावरण पैदा किया जाय। लोगों में लोकप्रिय उत्साह पैदा हो कि वे नये भारत के आर्थिक और सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए राष्ट्रव्यापी उद्योग करें।

हो सकता है इन लेखों में मैंने कुछ लोगों को नाराज कर दिया हो, कुछ को धक्का पहुँचाया हो, किन्तु मैं विश्वास दिलाता चाहता हूँ कि यह सब मैंने जनता के लाभ की दृष्टि से किया है, मुझे कोई व्यक्तिगत रंजिश नहीं है।

मैं प्रधान मंत्री के प्रति आभारी हूँ कि उन्होंने मेरे सुभावों को योजना आयोग के विचारार्थ सौंप दिया है। यद्यपि वे कभी दूसरा प्रभाव भी पैदा कर देते हैं, पर वे हम सब में सबसे महान् जनतन्त्रवादी हैं। मैं

जानता हूँ कि कई अवसरों पर उन्होंने बहुमत की बात को स्वीकार कर उस पर अमल किया है, यद्यपि वे उसके विपरीत मत रखते थे । इसमें उनका कोई दोष नहीं है कि किसी कारणवश लोग अपने मन की बात खोल कर नहीं कहते । यदि इन लेखों से लोगों को देश पर प्रभाव डालने वाले महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर अपने मन की बात कह देने की प्रेरणा मिली, तो इन लेखों का उद्देश्य सफल हो जायगा ।

अध्याय १७

इस फिजूलखर्ची को बन्द करो

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता करने और फिजूलखर्ची को खत्म करने का प्रश्न सरकार और जनता के ध्यान को आकर्षित करता रहा है। इसे सिद्ध करने के लिए कदम भी उठाये गये, किन्तु अपेक्षित फल प्राप्त न हुआ।

कांग्रेस सरकार ने सत्ता ग्रहण करने के तुरन्त बाद केन्द्र में एक मितव्यय समिति की स्थापना श्री कस्तूरभाई लालभाई की अध्यक्षता में स्थापित की। समिति ने रेलवे को छोड़ कर प्रत्येक मंत्रालय की सावधानी से जाँच-पड़ताल कर एक सर्वसम्मति रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें जो सिफारिशें की गई थीं, यदि उन पर अमल किया जाता तो ४ करोड़ रु० से अधिक की बचत हो सकती थी। किन्तु उन्हें स्वीकृत करने और अमल में लाने के बजाय उनकी करीब-करीब अवहेलना ही कर दी गई और कई मंत्रालयों में खर्च एक न एक बहाना लेकर बढ़ता ही गया।

एक दूसरी समिति की स्थापना रेलवे के कार्य की जाँच करने हेतु डा० हृदयनारायण कुंजरू की अध्यक्षता में की गई, ताकि शासन में अधिकाधिक सहयोग, कुशलता और मितव्ययिता हो सके। लेकिन जब तक कि यह समिति अपना कार्य समाप्त करती कि सरकार ने एक दूसरी समिति—रेलवे ग्रेनशौप्स इन्वॉयरी कमेटी स्थापित कर दी, जिसका अध्यक्ष लेखक ही था और सदस्य थे श्री के० सन्थानम और श्री खण्डूभाई देसाई। इस समिति का काम उन रेलवे ग्रेन शौप्स के कार्य की जाँच करना था, जिनकी स्थापना युद्ध काल में हुई थी और सरकारी खजाने का ३० करोड़ रु० वार्षिक खर्च होता था। इस समिति ने ३ माह में एक सर्वसम्मति रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी। यद्यपि अफसरों को इसके लागू करने में भय और शंका थी, किन्तु विशेष रूप से श्री के० सन्थानम के हठ प्रयास से—जो तब रेलवे मंत्रालय के मंत्री बन चुके थे—इन्हें काफी हद तक लागू किया गया और इनसे करीब १३६२ करोड़ रु० की वार्षिक बचत हुई।

रेलवे मंत्री ने प्रधान मंत्री को इस विषय में जो लिखा था, उसका यह अंश बहुत महत्वपूर्ण है :—

“मेरे विचार से रेलवे मन्त्रालय द्वारा समिति की सिफारिशों को स्वीकार करने का यह विशेष महत्व नहीं है कि इनसे तत्काल बचत हाँसिल हुई है और जो काफी है, लेकिन इससे भी अधिक महत्व यह है कि रेलवे के वित्त की गम्भीर गिरावट को रोक दिया गया है, जो पुरानी ग्रेन शौषों को जारी रखने के प्रतिफल स्वरूप होती।”

पुनर्स्थापन मन्त्रालय

जैसे ही मैं सहायता व पुनर्स्थापन मन्त्री नियुक्त हुआ, मैंने श्री के० सन्थानम की अध्यक्षता में विधान सभा के दो और सदस्य नियुक्त कर एक समिति बना दी, जिसके जिम्मे यह काम सौंपा कि वह ६ माह पुरानी सहायता व पुनर्स्थापन मन्त्रालय के काम की जाँच करे। समिति ने चन्द्र हफ्तों में रिपोर्ट दे दी और उसकी सिफारिशों को लागू किया गया, जिसके प्रतिफलस्वरूप कर्मचारियों और खर्च में काफी कमी कर दी गई।

इससे मेरे इस दृष्टिकोण की पुष्टि हुई कि अन्य मन्त्रालयों में भी मितव्ययिता की आवश्यकता है। किन्तु मेरे हाथ में काम इतना ज्यादा था कि मेरे पास कुछ और सोचने के लिए समय ही न था। किन्तु अपने पद से हटने के बाद मैंने इस समस्या पर फिर गौर करना शुरू किया। इसी दौरान मैं नये संविधान के अधीन एस्टीमेट्स एण्ड पब्लिक अकाउण्ट कमेटियों का संगठन किया गया ताकि अनुमान और व्यय के ऊपर इनका अधिकार रहे। विभिन्न मन्त्रालयों के कार्य के सम्बन्ध में इन्होंने समय-समय पर अपनी रिपोर्टें दी हैं।

विभिन्न समितियों की रिपोर्टें तथा अन्य सामग्री का सावधानी से अध्ययन करने के बाद मैंने जनवरी १९५१ में वित्त मंत्री श्री सी० डी० देशमुख को पत्र लिखा, जिसमें मैंने मितव्ययिता और शासन में अपव्यय रोकने के सम्बन्ध में अपने सुझावों की रूपरेखा दी थी। मैं समझता हूँ कि उनके कुछ उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा, क्योंकि मैं अब भी अनुभव करता हूँ कि उन पर अमल करने से बहुत बन्त हो सकती है।

कुछ सुझाव

मैंने मितव्ययिता के सम्बन्ध में १५ शीर्षकों के अन्तर्गत सुझाव दिये थे, यहाँ संक्षेप में मैंने उनमें से कुछ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

१. मंत्रालयों की संख्या कम की जाय और सचिव तथा उप सचिव कम किये जायें ।

२. वृद्धावस्था के कारण जिन्हें नौकरी से मुक्त किया जाय, उन्हें दुबारा न रखा जाय । मंत्रिमण्डल ने ऐसे लोगों की पुनः नियुक्ति के विरुद्ध निश्चय किया है, फिर भी सैकड़ों लोगों को एक न एक बहाना बना कर नौकरी दे दी गई ।

३. एक ही श्रेणी के अफसरों को समान स्तर पर वेतन मिले ।

४. विशेष वेतन को बन्द किया जाय—बहुत से अफसरों को काफी ऊँचे वेतन के अलावा विशेष तनखा भी दी जाती है ।

५. सफर खर्च—फिजूलखर्ची की एक मद यह सफर खर्च भी है । कुछ सीमा तक सफर आवश्यक हैं, पर किसी भी व्यक्ति को तब तक हैड कार्टर न छोड़ना चाहिए, जब तक उसके सचिव या मंत्री की इजाजत न मिल जाय ।

पार्लियामेण्ट के सदस्यों को दैनिक भत्ते की वर्तमान पद्धति के स्थान पर निश्चित मासिक पारिश्रमिक देने की उपयोगिता पर विचार किया जाना चाहिए और जब तक कोई निर्णय नहीं हो जाता डी० ए० घटाकर ३० रु० कर देना चाहिए । उन्हें इस समय फर्स्ट क्लास टी० ए० मिलता है, इसके स्थान पर सैकिण्ड क्लास का रेलवे पास दिया जाय ।

मैं यह भी समझता हूँ कि जिन अफसरों का वेतन १००० रु० तक है, उन्हें सैकिण्ड क्लास का पास और जिनका वेतन अधिक है, उन्हें फर्स्ट क्लास का रेलवे पास दिया जाय । टी० ए० की वर्तमान पद्धति को बन्द कर दिया जाय ।

बुद्धिमत्तापूर्वक काम के पुनः बटवारे से भी इस दिशा में काफी लाभ होगा । उदाहरणार्थ बम्बई स्थित एविएशन सुपरिन्टेण्डिंग इंजीनियर को वायुयान चलाने के कार्य को देखने के लिए मद्रास जाना पड़ता है और नौन-एविएशन सुपरिन्टेण्डिंग इंजीनियर को अपने अधीन काम का निरीक्षण करने के लिए मद्रास से बम्बई जाना पड़ता है ।

(पार्लियामेण्ट के सदस्यों के सम्बन्ध में तो मेरा सुझाव स्वीकृत कर लिया गया है, पर अफसर अब भी टी० ए० वसूल करते हैं ।)

६. स्टाफ कारें—युद्ध काल में स्टाफ कारों का प्रचलन शुरू हुआ था । यह बर्बादी का एक बड़ा साधन है । यह सर्व विदित है कि अधिकांश मंत्रालय ह्रास के अलावा प्रतिमास १० हजार रु० और इससे भी अधिक स्टाफ कारों के ऊपर खर्च करते हैं । मेरी राय में स्टाफ कारों

के तरीके को खत्म किया जाय । इसके विपरीत ट्रांसपोर्ट मंत्रालय २० या २५ कारें रखे, जो अत्यन्त जरूरी काम के समय दे दी जाया करें और सम्बन्धित मंत्रालय के जिम्मे खर्च लिख दिया जाया करे ।

७. आकस्मिक व्यय—अनिश्चित आवश्यकता के फलस्वरूप होने वाले व्यय की मद फिजूलखर्ची का समुद्र है । इस मद के अन्तर्गत होने वाले व्यय की जाँच-पड़ताल पूरी जोरदारी के साथ होनी चाहिए । स्टेशनरी और छपाई की मदों में जबर्दस्त बर्बादी और चोरी होती है । मेरी राय है कि मंत्रालयों की माँग को घटा कर एक दम आधा कर दिया जाय । यदि अतिरिक्त धन की आवश्यकता हो, तो मंत्रालय विशिष्ट मंजूरी के लिए वित्त मंत्रालय से कह सकते हैं ।

८. टेलीग्राम व टेलीफोन—मैं अपने निजी अनुभव से जानता हूँ कि जहाँ खत भेजने से काम चल जाय, वहाँ तार भेजने का रुझान होता है और जहाँ तार से काम चल सकता है, वहाँ ट्रंक काल किया जाता है । टेलीग्राम और टेलीफोन में सरकार का कई लाख रुपया खर्च होता है । यदि प्रत्येक टेलीग्राम संयुक्त सचिव या उच्च उपसचिव के दस्तखत से भेजा जाय और ट्रंक काल पूर्व अनुमति प्राप्त करने के बाद किया जाय, तो काफी बचत हो जायगी ।

टेलीफोन डायरेक्टरी के देखने से पता चलेगा कि दिल्ली स्थित सरकारी अफसरों के नामों से ३,०४६ टेलीफोन लगे हुए हैं । यह संख्या काफी कम की जा सकती है । इस तरीके से सरकारी व्यय में ही कमी न हो जायगी, अपितु अतिरिक्त आय भी बढ़ेगी, क्योंकि हजारों गैर-सरकारी व्यक्ति टेलीफोनों के लिए उम्मीदवारी की सूची में टँगे हुए हैं ।

९. सरकारी आतिथ्य—एक रिपोर्ट में बताया गया है कि विभिन्न मंत्रालयों के आतिथ्य की मद में वार्षिक खर्च ८० लाख रु० हुआ है । यह बताने की जरूरत नहीं कि इस खर्च को जड़ से खत्म कर देना चाहिए ।

१०. सरकारी इमारतें—सरकार के निवासार्थ मकानों को कारबारी तरीके से रखना चाहिए, यानी कि किरायेदारों से २०-२५ वर्ष में मकान का पूरा मूल्य वसूल हो जाना चाहिए । इसके विपरीत हो यह रहा है कि सरकारी कर्मचारियों को जो मकान किराये पर दिये जाते हैं, उनकी टीम-टाम में किराये के अलावा और ऊपर से भी बहुत कुछ खर्च हो जाता है ।

मैंने अपने छस पत्र को इस पैरे के साथ समाप्त किया था :—

स्वार्थी लोग

“सरकार में ऐसे स्वार्थी लोग हैं जो हमारी योजना को नष्ट करने का प्रयास करेंगे और वहाँ ऐसे लोग होंगे जो कागजी अर्थ व्यवस्था प्रस्तुत कर देंगे, जैसा कि अब तक हुआ है। दूसरी मदों में कटौती करने के स्थान पर इस बात के सुझाव दिये जायेंगे कि मूल पूँजी में ही कटौती कर दी जाय। इस प्रकार के लोगों से हमें बचाव करना पड़ेगा। सम्भवतः सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि प्रधान मन्त्री एक दो योग्य साथियों के सहयोग से नीति-निर्देश करें और उसे पूरी तरह अमल में लाने का कार्य एक मन्त्री के जिम्मे कर दें, जो उस योजना को दृढ़ता और उत्साह से चलाये।”

जैसा कि मेरे २४ फरवरी १९५१ के पत्र के इस अंश से सिद्ध है वित्त मन्त्री से मैंने कोई उत्साहजनक उत्तर प्राप्त नहीं किया :—

“जहाँ तक विभिन्न मन्त्रालयों में मितव्ययिता और छँटनी के बारे में मेरे निष्कर्षों को आपके पास भेजने का सवाल है, मैंने उन्हें जानबूझ कर नहीं भेजा। क्योंकि मैंने समझा कि जब तक मेरे सुझावों के बारे में आपकी प्रतिक्रिया मुझे मालूम नहीं पड़ती, तब तक उनका कोई लाभ नहीं होगा। इसके अतिरिक्त मुझे समाचार पत्रों में छपी खबरों से मालूम पड़ा है कि सरकार ने ढील डालने का निश्चय किया है। मैं नहीं जानता, यह कहाँ तक सही है, किन्तु मैं अब भी यह अनुभव करता हूँ कि वित्त मन्त्री के लिए सबसे आवश्यक कार्य विभिन्न मन्त्रालयों के बढ़े हुए खर्चों को कम करना है, बजट का सन्तुलन करना नहीं। मुझे डर है कि यदि इस कार्य को दृढ़ और यथार्थवादी तरीके से नहीं किया गया तो हम अपनी अर्थ व्यवस्था को और बिगड़ने से रोक नहीं सकेंगे। बहरहाल, मैं इस पत्र में कुछ और सुझाव दे रहा हूँ, जिन्हें अपने १७ जनवरी १९५१ के पत्र में शामिल नहीं किया गया था।

अन्य सुझाव

“सम्भवतः आपको ख्याल होगा कि अंग्रेजों के भारत से जाने और भारत के बटवारे के कारण बहुत से अफसरों को उच्च पदों पर तरक्कियाँ मिल गई हैं और वे बहुत ऊँची तनखाएँ प्राप्त कर रहे हैं—जो सामान्य तरीके से उनको प्राप्त नहीं हो सकती थीं। इसके अतिरिक्त, जैसा कि मितव्यय समिति ने निर्देश किया है, ये तरक्कियाँ असमान हुई हैं और कई स्थितियों में अफसरों को तनखा में अन्धाधुन्ध तरक्की मिल गई है।

“मैं जानता हूँ कि पाकिस्तान में यह नियम बना दिया गया है कि किसी व्यक्ति की तनखा ३१ जुलाई १९४७ को जो थी, उससे उसे

३० प्रतिशत से अधिक तरक्की नहीं मिलेगी। इसका कोई लिहाज न होगा कि वह किस पद पर था। मैं समझता हूँ कि इस प्रकार का कोई नियम, जिसे पहले से लागू किया जाय, उपयोगी सिद्ध होगा और मुझे आशा है कि आपको इसमें संसद से पूरा समर्थन प्राप्त होगा।

“जहाँ तक सफर भत्ते का सवाल है, इस समय अफसरों को हवाई जहाज के किराये का चौथाई भाग और रेलवे किराये का आधा भाग अतिरिक्त सफर खर्च को पूरा करने के लिए मिलता है। मैं समझता हूँ कि इसके स्थान पर, यदि उन्हें दैनिक भत्ता रवानगी के समय से लेकर पहुँच के समय तक रेल किराये के अतिरिक्त दिया जाय, तो इससे न सिर्फ सरकार को काफी बचत ही होगी, अपितु अनावश्यक सफर के लिए उत्साह में भी कमी हो जायगी।”

यद्यपि सुभावों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया, किन्तु इनमें से कुछ २-३ साल बाद लागू हो गये। उदाहरणार्थ १९५४ या १९५५ में आकस्मिक खर्च में ५ से ३ प्रतिशत तक कमी कर दी गई। यद्यपि मैं अब भी अनुभव करता हूँ कि इसमें बड़ी सुविधा से ५० या ६० प्रतिशत की कटौती की जा सकती थी और इससे उल्लेखनीय बचत भी हो जाती।

१९५२ में मैं अनुमान समिति के लिए चुना गया और ३ वर्ष तक उसके सदस्य की हैसियत से मुझे कई मंत्रालयों और सरकारी उद्योगों के कार्य को जाँचने का मौका मिला, इससे मेरा और भी दृढ़ मत हुआ कि मितव्ययिता करने व फिजूलखर्ची रोकने की नितान्त आवश्यकता है। श्री सी० डी० देशमुख से पूर्व वित्त मंत्री डा० जॉन मथाई की अध्यक्षता में बने कर जाँच आयोग ने सरकारी खर्च में पूर्ण रूप से और सावधानी के साथ जाँच किये जाने की आवश्यकता पर जोर दिया है।

सरकारी खर्च में पूरी-पूरी जाँच-पड़ताल इनके दायरे से बाहर की चीज थी, अतः कर जाँच आयोग ने विकास कार्य के अलावा अन्य मंडों में होने वाले खर्च की वृद्धि पर ज्यादा से ज्यादा रोक लगाने, मितव्ययिता करने और फिजूलखर्ची रोकने की आवश्यकता पर जोर दिया। अपने निष्कर्ष में आयोग ने कहा :—

“हम खुद इस बात की जबर्दस्त जरूरत महसूस करते हैं कि केन्द्रिय सरकार और राज्यों दोनों में सरकारी खर्चों की पूरी और सावधानी के साथ जाँच हो। हमारा सुझाव है कि उच्च शक्ति प्राप्त समितियों को इस प्रकार की जाँच का कार्य सौंपा जाय।”

आयोग ने विशेष रूप से केन्द्रिय सरकार व राज्यों के ग्राम शासन प्रबन्ध में होने वाले खर्च में अधिकता का उल्लेख किया ।

सन् १९५५ व १९५६ में दोनों वर्ष यह सवाल संसद के दोनों सदनों में उठाया गया ।

१९५५ में राजसभा में बजट पर हुई बहस का उत्तर देते हुए श्री देशमुख ने इस महत्वपूर्ण सिफारिश को बातों में ही उड़ा दिया । आपने कहा, “मुझे इस बात की बड़ी आशंका है कि कर जाँच आयोग द्वारा प्रस्तावित जाँच कराई गई तो निस्सन्देह कार्यालयों में नोचे से ऊपर तक कटौती की सिफारिशें लाजिमी की जावेंगी, जिन्हें विशेष रूप से वर्तमान बेरोजगारी की अवस्था में लागू करना कठिन हो जायगा ।” यह प्रश्न पुनः लोकसभा में उठाया गया । इस बात की ओर इशारा किया गया कि मन्त्रालयों और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों में ही अधिकता नहीं है, पर ऊँचे पदों पर भी नियुक्त हाकिमों में करीब २५ प्रतिशत का आधिक्य है । यह भी सुझाव दिया गया था कि छूटनी किये गये लोगों को विकास तथा अन्य योजनाओं में लगा देना कठिन न होगा । शासकीय कुशलता के लिहाज से भी इतने अधिक स्टाफ को रखना अवांछनीय है, जबकि उनमें बहुत से अस्थायी हैं । आलोचकों का मत है कि यदि अतिरिक्त स्टाफ को पेंशन देकर छुट्टी दे दी जाय या उनकी सेवाएँ किसी सामाजिक संस्था को प्रदान कर दी जायें, तो भी शासन के कार्य में काफी तरक्की हो जायगी और आर्थिक रूप से कुछ न कुछ बचत ही होगी । किन्तु वित्त मन्त्री के पास कोई उत्तर ही न था ।

जब कि दूसरे देशों में शासकीय स्टाफ में काफी कमी की जा रही है और हमारे अपने देश में भी व्यापारिक और औद्योगिक कारखानों में, जहाँ स्टाफ कुछ ही अधिक है, थोड़े लोगों से ज्यादा काम लेने की अनुमति दे दी गई है—यह खेद की बात है कि भारत सरकार के वित्त मन्त्री ने गलत प्रवृत्ति का परिचय दिया और इस महत्वपूर्ण समस्या को सुलझाने में डर प्रकट किया है । यह समस्या न केवल देश के वित्त पर ही असर डालती है, अपितु शासन की ईमानदारी और कुशलता पर भी लांछन लगाती है । आयोग के अध्यक्ष और कोई नहीं श्री देशमुख के बिलकुल पूर्व वित्त मन्त्री डा० जान मथाई थे, जिन्हें पर्याप्त शासकीय अनुभव है और केन्द्रिय सरकार की शासकीय मशीनरी से वे पूरी तरह परिचित हैं—फिर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि श्री देशमुख हमसे यकीन करने के लिए कहते हैं कि उस आयोग ने ऐसी सिफारिश की है जो अमल में लाये जाने के अयोग्य है ।

खैर इस बात को भी मान लिया जाय कि वित्त मंत्री मानवीय दृष्टिकोण से अतिरिक्त स्टाफ की छटनी नहीं कर रहे हैं, किन्तु हम यह तो पूछने के हकदार हैं कि केन्द्रिय शासन, अन्य राजकीय संगठन और केन्द्रिय सरकार के अधीन अन्य राज्य संचालित कारपोरेशनों में से फिजूलखर्ची और बर्बादी को रोकने के लिए क्या कदम उठाये गये हैं ?

आडिट रिपोर्ट आदि

आडिट रिपोर्टों और अन्य विधान सम्मत समितियों, जैसे अनुमान समिति और सरकारी हिसाब समिति की रिपोर्टों ने एक मत से अनेकों मामलों को प्रस्तुत किया है, जिनमें करोड़ों रुपये के व्यय में फिजूलखर्ची और बर्बादी के उदाहरण दिये गये हैं। यहाँ मैं उन्हें बताने की जरूरत नहीं समझता क्योंकि इन्हें लोग अच्छी तरह जानते हैं। एक आडिट रिपोर्ट में तो आतिथ्य में अत्यधिक रुपया खर्च करने की ओर ध्यान आकर्षित कराया गया है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के मसविदे के प्रकाशन के बाद मैंने योजना के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में अनेकों पत्र योजना आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किये। उनमें से एक में मैंने उल्लेख किया था कि आम शासन प्रबन्ध के अतिरिक्त सरकारी कामों में होने वाले खर्च में उल्लेखनीय बचत हो सकती है। केन्द्रिय सरकार ने एक विशेषज्ञ समिति की नियुक्ति की थी, जिसने ठेकेदारों को शीघ्र रुपया अदा करने की सिफारिश करते हुए कहा था कि रुपये की अदायगी में विलम्ब होने का अर्थ ऊँची दर के टेंडर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्र रुपया अदा करने से कुछ मामलों में १० से १५ प्रतिशत की बचत हो सकती है।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों का कुल व्यय ८०० करोड़ रु० है। यदि कर जाँच आयोग और विशेषज्ञ समिति के सुझावों के अनुसार मित-व्ययिता और बचत की जाय तो ४ से १० प्रतिशत तक की कमी हो सकती है। यह रकम ५० से ६० करोड़ रु० या द्वितीय योजना काल में २५० से ३०० करोड़ रु० तक हो जायगी। मुझे अब भी आशा है कि वित्त मंत्री नये करों के साधन निकालने के पूर्व सरकारी खर्च में हर सम्भव तरीके से मितव्ययिता करके हर प्रकार की फिजूलखर्ची और बर्बादी को रोकने का प्रयास करेंगे। वे राज्यों के मुख्य मंत्रियों को नये कर लगाने के बजाय (वे १० करोड़ रु० के नये टैक्स लगाने के लिए तैयार हो गये हैं) अपना आदर्श प्रस्तुत कर उन्हें द्वितीय पंचवर्षीय योजना के हित में हर सम्भव बचत करने के लिए बाध्य करेंगे।

संयम

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत लोगों से आशा की जाती है कि वे संयमित मापदण्ड की स्थापना करेंगे और द्वितीय पंचवर्षीय योजना की सफलता के लिए अपने पेट की पट्टी को और कसेंगे। यदि शासन एक आदर्श उपस्थित कर सके तो यह शुभ शकुन होगा। उसे चाहिए कि वह अतिव्यय, फिजूलखर्ची और बर्बादी को खत्म कर वचन को योजना के लिए लगा कर मार्ग-प्रदर्शन करे। इस प्रकार की किसी मिसाल के बिना, मुझे अन्देश है कि लोगों को उत्साहित करना और अपनी अतिरिक्त शक्ति को इस कार्य में लगाने के लिए प्रेरणा देना सरल नहीं होगा।

मुझे इस बात से खुशी है कि योजना आयोग ने मितव्ययिता और आत्मनिर्भरता की आवश्यकता पर जोर दिया है। उसने लिखा है :—

“द्वितीय पंचवर्षीय योजना का परिमाण इतना बड़ा है कि देश पर जबर्दस्त जोर पड़ जायगा और इसके लिए जनता की हर श्रेणी को काफी प्रयास करने पड़ेंगे। आम तौर से लोग एक बड़े बोझ को उठाने के लिए तैयार हैं, यदि इस बात का भरोसा हो जाय कि उसका मितव्ययिता और कुशलता के साथ उपयोग होगा और कोई फिजूलखर्ची नहीं होगी।” (पृष्ठ १५२, पैरा ११)

विकास खण्डों के निर्माण में मितव्ययिता लाने के विशेष उद्देश्य से एक समिति का निर्माण राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा केन्द्रिय गृह मंत्री की अध्यक्षता में किया गया है।

यद्यपि समिति की नियुक्ति स्वागत करने योग्य है, किन्तु मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यह समिति कर जाँच आयोग द्वारा प्रस्तावित समिति के उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर रही है। क्योंकि इस समिति को उस खर्च से कोई सरोकार न होगा, जो योजना के अन्तर्गत विकास खण्डों से सम्बन्धित नहीं हैं।

चीन का उदाहरण

विकास खण्डों के सिलसिले में भी नियोजक उन लोगों के लिए सिद्धान्त निर्धारित कर दें जिन पर इनके निर्माण की जिम्मेदारी है, जैसा कि चीन में किया गया था। यहाँ चीन राज्य योजना आयोग के अध्यक्ष श्री ली फू-चुन द्वारा प्रथम पीपुल्स कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में ५ व ६ जुलाई १९५५ को दिये गये भाषण के कुछ अंशों की ओर

पाठकों का ध्यान पुनः आकर्षित करना आवश्यक समझता हूँ । (देखिए इसी पुस्तक के पृष्ठ २८, २९ व ३० ।)

चेतावनी

कुछ दिनों से मैं इसी रूपरेखा के अनुरूप, विशेष रूप से इमारतों के निर्माण में मितव्ययिता लागू करने और बर्बादी रोकने के लिए जोर दे रहा हूँ । किन्तु मेरे सुभावों पर गम्भीरता से विचार नहीं किया गया । मैं इस बात की चिन्ता नहीं करता, क्योंकि जो सब से बाद में हँसता है उसी का अट्टहास सब से जोरदार होता है । गतवर्ष वित्त मंत्री ने लोक सभा में कहा था कि प्रति वर्ष ४० करोड़ रु० से अधिक की टैक्स की चोरी हो नहीं सकती, तत्पश्चात् सेण्ट्रल बोर्ड ऑफ रेवेन्यू का हिसाब इससे चौगुना बैठा—यह अंक प्रो० काल्डोर के हिसाब के समीप था ।

मेरा सुभाव है कि केन्द्र और राज्य सरकारों के सभी खर्च, भले ही वे योजना के अन्तर्गत विकास खण्डों पर हों या दूसरी चीजों पर एक उच्च शक्ति प्राप्त समिति की दृष्टि के सामने से गुजरने चाहिए । मैं यह भी सुभाव दूँगा कि समिति मितव्ययिता लागू करने और बर्बादी व फिजूलखर्ची से बचने के लिए सब के मार्ग-प्रदर्शन के लिए मोटे-मोटे सिद्धान्तों को निर्मित कर दे ।

अन्त में यही कहना है कि साधनों का उल्लेख करते समय इसका भी हिसाब लगाया जाय कि बचत आन्दोलन से योजना में कितनी सम्भावित बचत हो जायगी । इससे शेष मदें और वित्तीय घाटे में कमी होने के साथ-साथ सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा ।

अनुक्रमणिका

महात्मा गांधी के भाषणों व लेखों से उद्धरण

त्याग के कई प्रकार हो सकते हैं। एक प्रकार रोटी के लिए श्रम भी है। यदि सभी लोग केवल रोटी के लिए कार्य करें और अधिक की हविस न हो तो सभी को पर्याप्त भोजन और पर्याप्त आराम मिल सकेगा। तब अधिक आबादी की हाय-हाय न होगी, न बीमारियाँ होंगी और न कोई ऐसी मुसीबत, जो आज चतुर्दिक व्याप्त हैं।

अब तक हजारों ग्रामवासियों को मरना-खपना पड़ा है, ताकि हम जीवित रह सकें। अब सम्भवतः हमें मरना-खपना होगा ताकि वे रह सकें।

नगर अपनी परवा करने में खुद समर्थ हैं। हमें गाँव की ओर अपनी दृष्टि घुमानी है।

ग्राम स्वराज के बारे में मेरी धारणा यह है कि यह पूर्ण प्रजातन्त्र है। अपनी नितान्त आवश्यकताओं के लिए पड़ोसियों पर निर्भर न हों, और फिर भी अनेक बातों के लिए परस्पर आश्रित हों, जिनके लिए आश्रय आवश्यक होता है।

गाँव में ग्राम थ्येटर, स्कूल और पब्लिक हाल होगा। इसकी अपनी जलकल व्यवस्था होगी, जिससे साफ पानी प्राप्त हो सके। यह कार्य नियन्त्रित कुओं और तालाबों से हो सकता है। अन्तिम बेसिक पाठ्य-

क्रम तक शिक्षा अनिवार्य होगी ! जहाँ तक सम्भव है हर कार्य सहकारिता के आधार पर संचालित होगा । आज जिस प्रकार की जातियाँ हैं, बैसी छुआछूत के आधार पर निर्मित जातियों का अस्तित्व न होगा ।

यदि मैं लैंगिक आनन्द के निमित्त बने आधुनिक कृत्रिम जीवन के विरुद्ध शिक्षा देता हूँ और नर-नारियों से कहता हूँ कि वे चर्खों में निहित सरल जीवन की ओर लौट चले, तो ऐसा मैं इसलिए करता हूँ क्योंकि सादगी की ओर बुद्धिमत्तापूर्ण वापसी के बिना बर्बरता से भी बढ़तर हालत से छुटकारा नहीं हो सकता है ।

मैं बुद्धिमान व्यक्ति को अधिक अर्जन करने की अनुमति दूँगा, मैं उसकी प्रवीणता को कुन्द नहीं करूँगा । लेकिन उसकी आय का अधिकांश भाग राज्य की उन्नति के लिए व्यय होगा, जिस प्रकार कि एक पिता के सभी कमाऊ लड़कों की आमदनी संयुक्त परिवार की निधि में पहुँच जाती है ।

जिस समय श्रम अपने मौरव को पहिचान लेगा, तो धन अपने न्यायसंगत स्थान को प्राप्त कर लेगा यानी वह श्रम के साथ सम्बद्ध हो जायगा । क्योंकि श्रम ही धन है ।

मुझे जिस चीज से ऐतराज है, वह है मशीनों की लिप्सा ; मुझे मशीन से द्वेष नहीं है । जिस चीज की उन्हें लिप्सा है, उसे वे श्रम बचाने वाली मशीनरी कहते हैं । मनुष्य 'श्रम बचाने के कार्य' में तब तक निरत रहता है, जब हजारों लोग बिना कार्य के हो जाते हैं और भुखमरी से मरने के लिए सड़कों पर फेंक दिये जाते हैं ।

मैं चाहता कि हूँ सम्पदा चन्द व्यक्तियों के हाथ में जमा न हो जाय, सभी के हाथों में रहे । आज स्थिति यह है कि मशीनें चन्द लोगों को

करोड़ों व्यक्तियों के ऊपर लाद देती हैं। इसके पीछे यह उदार प्रेरणा नहीं है कि श्रम की बचत होगी, बल्कि लोभ की भावना रहती है।

मैं इस विश्वास को निश्चित रूप से व्यक्त कर सकता हूँ कि बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन की सनक के कारण ही संकट उत्पन्न होता है।

मेरी व्यवस्था में श्रम ही चालू मुद्रा है, धातु नहीं। जो भी व्यक्ति अपने श्रम का उपयोग कर सकता है, वह इस मुद्रा का स्वामी है, सम्पदा का स्वामी है। वह अपने श्रम को कपड़े से बदल लेता है, गत्ते से बदल लेता है। यदि उसे सुवासित तेल की आवश्यकता है, जिसे वह खुद तैयार नहीं कर सकता, तो वह अपने अतिरिक्त गत्ते को तेल के लिए इस्तेमाल करता है। यह मुक्त, उचित और समानता की शर्त पर श्रम का विनिमय है—अतएव राहजनी नहीं। आप यह एतराज कर सकते हैं कि यह तो वस्तुओं की अदला-बदली की आदिम अवस्था को लौटा कर लाना है। किन्तु क्या सभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार वस्तुओं के विनियम की इसी पद्धति पर आधारित नहीं हैं ?

जनता के लाभ के काम के लिए भारी मशीनों का अनिवार्य स्थान है, ये उस काम को करेंगी जिसे मानव-श्रम से नहीं किया जा सकता, किन्तु ये सब राज्य के अधिकार में होंगी और इनका उपयोग केवल जनता के हितार्थ होगा।

एक कारखाना कुछ सौ व्यक्तियों को तो काम पर लगा लेता है और हजारों को बेकार कर देता है। मैं किसी तेल मिल में टनों तेल तैयार कर सकता हूँ, पर साथ ही हजारों तेलियों से रोजगार भी छीन लेता हूँ। मैं इसे विनाशकारी शक्ति कहता हूँ। मेरा कहना है कि हजारों हाथों के श्रम से किया गया उत्पादन रचनात्मक और सर्व-साधारण के लिए लाभकारी है।

यहाँ बाइबिल के इस कथन को उद्धृत करना ही पर्याप्त है, मनुष्य का इससे क्या भला होगा कि उसे सारा संसार ही प्राप्त हो जाय किन्तु उसकी आत्मा जाती रहे ?”

जैसा कि मैंने कहा है ईशोपनिषद के पहले ही छन्द में समाजवाद ही नहीं कम्यूनिज्म का स्पष्टीकरण किया गया है। सत्य बात यह है कि जब कुछ सुधारकों ने हृदय-परिवर्तन के तरीके में आस्था खो दी तो वैज्ञानिक समाजवाद की पद्धति को जन्म मिला।

प्रत्येक निर्णयात्मक क्षण में नये विषय-वस्तु वाले आर्थिक कानून चूर-चूर हो गये हैं। जो राष्ट्र या व्यक्ति इन्हें मार्ग-प्रदर्शक आचार-सिद्धान्त के रूप में मानते हैं, उन्हें खत्म हो ही जाना चाहिए।

हम अपनी राष्ट्रीय शक्ति को संयुक्त करना चाहते हैं। इसे हम केवल उत्पादन के सर्वोत्तम साधन अपना कर ही सिद्ध नहीं कर सकते, किन्तु इसके लिए उत्पादन और वितरण दोनों की सर्वोत्कृष्ट रीति को अपनाना जरूरी है।

मेरा आदर्श समान वितरण है, लेकिन जहाँ तक मेरा ख्याल है, इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं न्यायसंगत वितरण के लिए कार्य करता हूँ।

हमें उस जन समूह को प्रशिक्षित करना है, जिसके हृदय सोने के हैं, जो देश के लिए सोचते हैं, जो सीखना चाहते हैं, मार्ग-प्रदर्शन चाहते हैं। किन्तु कुछ बुद्धिमान, लगन वाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, फिर तो सारा राष्ट्र बुद्धिमत्ता के साथ कार्य करने के लिए संगठित हो जायगा और समूहवाद में से जनतंत्रवाद विकसित होगा।

बहुमत के शासन को मानने की बात एक हद तक उचित है यानी किसी बात के विस्तार में जाने पर जो सवाल उठें, उनमें बहुमत माना जा सकता है। किन्तु बहुमत के नियन्त्रण में रहना दासता है, इसकी कोई चिन्ता न होनी चाहिए कि फैसला क्या है। जनतंत्रवाद एक ऐसी अवस्था नहीं है, जिसमें मनुष्य भेड़ के समान कार्य करता है। जनतंत्रवाद में विचारों और कार्य के व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य की पूरी रक्षा की जाती है।

मेरे स्वराज्य का कार्य अपनी सभ्यता की खूबियों को सुरक्षित रखना है। मैं बहुत-सी नई चीजें लिखना चाहता हूँ, किन्तु वे सब भारतीय पटल पर लिखी जानी चाहिए। जब मैं ब्याज सहित पूँजी लौटाने में समर्थ हो जाऊँगा, तब मैं पश्चिम से खुशी-खुशी उधार माँगूँगा।

स्वराज्य की ओर प्रगति उसी हिसाब से होगी, जिस हिसाब से हमारे पास कार्यकर्त्ता होंगे—ऐसे कार्यकर्त्ता जो अपना सब कुछ मरीबों के हितार्थ न्यौछावर करने को उद्यत हों।

अतएव मेरी स्वदेशी मुख्य रूप से हाथ के बुने खदर में केन्द्रित है और उन सभी चीजों को अपना लेती है जो भारत में बनती हैं।

भारतवर्ष की प्रत्येक वस्तु मुझे आकर्षित करती है। यहाँ सब कुछ सुलभ है, जिसे मानव मात्र की ऊँची से ऊँची आकांक्षाएँ चाह सकती हैं।

भारत भोग-भूमि के विपरीत मुख्य रूप से कर्म-भूमि है।

यूरोप के चरणों में पड़ा हुआ भारत मानवता के लिए आशा का अंकुर नहीं हो सकता । जाग्रत और मुक्त भारत ही कराहते हुए विश्व को शान्ति और सद्भाव का सन्देश दे सकता है ।

भारतवर्ष को मानवता के लिए प्राण देने की लालसा करने के पूर्व जीवित रहना सीखना चाहिए ।

व्यक्ति को अपने परिवार के लिए, परिवार को गाँव के लिए, गाँव को अपने जिले के लिए, जिले को प्रान्त के लिए, प्रान्त को राष्ट्र के लिए और राष्ट्र को सब के लिए त्याग करना चाहिए ।

भारत का भाग्य पश्चिम के रक्तरंजित मार्ग से अनुबद्ध नहीं है, जिसमें थकान के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं, इसका भाग्य शान्ति मार्ग से बँधा है, जिसका उद्भव सरल और दैविक जीवन से होता है । भारत की आत्मा के हनन की आशंका है । वह उसे खोकर जीवित नहीं रह सकता । अतएव उसे आलस्य और निराशा के वश यह नहीं कहना चाहिए कि “पश्चिम के हल्ले के सामने मैं कैसे बच सकता हूँ ?” उसे अपने और संसार के हितार्थ इस हल्ले को रोकने में समर्थ होना चाहिए ।

मुझे पूरी तरह विश्वास है कि भारत कष्टों की ज्वाला से निकलने और अपनी संस्कृति पर नाजायज हमले का मुकाबला करने में समर्थ रहा है । यद्यपि यह संस्कृति अपूर्ण ही है, पर समय के घात-प्रतिघातों के बावजूद अटल रही है । यह शान्ति के लिए स्थायी देन है और विश्व के लिए ठोस प्रगति प्रदान कर सकती है ।

मैं इस बात के पक्ष में नहीं हूँ कि हम बिल्कुल ही निराले हो जायें या रास्ते में रुकावटें खड़ी कर लें । किन्तु मैं अत्यन्त विनय के

साथ इस बात को कहता हूँ कि हम दूसरी संस्कृतियों की प्रशंसा करें, पर बाद में, अपना संस्कृति की प्रशंसा और उसे आत्मसात् करने के पूर्व नहीं। मेरा यह दृढ़ मत है कि हमारी संस्कृति में जितना समृद्ध खजाना है, उतना और कहीं नहीं है।

यद्यपि मैंने पश्चिमी सभ्यता के आभार को निस्संकोच स्वीकार किया है, किन्तु मैं इस बात को कहूँगा कि राष्ट्र की जो कुछ सेवा कर सका हूँ वह यथासम्भव केवल पूर्वी संस्कृति को अपनाने के कारण ही सम्भव हुई है।

नोट—उपर्युक्त सूक्तियों का चयन सर्वश्री आर० के० प्रभू और यू० आर० राव द्वारा संग्रहीत पुस्तक “द माइण्ड ऑफ महात्मा गांधी” से किया गया है।

हम करके काम दिखायेंगे

बेकार तराने छोड़ कर हम काम के गीत सुनायेंगे ।
कोरी बातें छोड़ कर हम करके काम दिखायेंगे ॥
काम से दुनिया चलती है काम है जीवन का आधार ।
काम से कौमें बनती हैं काम से होता है उद्धार ॥
खाना-पीना, लिखना-पढ़ना, काम बिना सब पर धिक्कार ।
देश की सेवा कौमी न रे काम बिना सब ही बेकार ॥
काम ही रोजा काम ही पूजा तीरथ और नमाज भी ।
काम राष्ट्र की कामधेनु है, मुश्किल कुशा महान् भी ॥
गाँव गाँव हम जायेंगे, काम का अलख जगायेंगे ।
कलजुग को कलयुग नहीं काम का जुग बनायेंगे ॥

(२)

भूख गरीबी गन्दगी और बेकारी बेशुम्मार ।
गाँव उजड़े, घर हैं टूटे और बीमारी की भरमार ॥
देश की जनता बे-पढ़ी और लाखों पढ़े-लिखे बेकार ।
घरेलू धन्धे मिट गये और निकम्मे हो गये दस्तकार ॥
विदेशी चीजें छोड़ कर हम देशी को अपनायेंगे ।
कोरी बातें छोड़ कर हम करके काम दिखायेंगे ॥

(३)

बिगड़ा हुआ समाज का ढाँचा बिगड़े हैं आचार-विचार ।
देश कलंकित कर रहे हैं भूठ, रिश्वत, चोर-बाजार ॥
जातपात की छूत लगी है प्रान्तीयता का भूत सवार ।
काम बहुत है करने को फिर हम क्यों बैठेंगे बेकार ॥
अधिकारों की चरचा छोड़ कर हम कर्तव्य करते जायेंगे ।
हम नाम नहीं छपवायेंगे, करके काम दिखायेंगे ॥

(१४२)

(४)

रुपया पैसा आता जाता वक्त फिर हाथ न आता ।
इतिहास भी है यही बताता काम से मानव आदर पाता ॥
काम को है जो ठुकराता, जीवन भर है वह पछताता ।
काम बिना कोई नहीं भाता, काम ही जीवन सफल बनाता ॥
हम समय नहीं गँवायेंगे, काम में जुट जायेंगे ।
तस्वीर खिंचाना छोड़ कर, हम करके काम दिखायेंगे ॥

(५)

पूँजी हमारी करोड़ों हाथ और है कुदरत की इफरात ।
हजारों नदियाँ लाखों चश्मे, करोड़ों एकड़ जमीन बेकाशत ॥
खानों की भी कमी नहीं है, कारीगर हैं हुशियार ।
सरकारी धन्धों की चरचा है और है जनता की सरकार ॥
औरों की आशा छोड़ कर हम अपने रास्ते जायेंगे ।
अपनी इज्जत अपनी दौलत अपने हाथ बढ़ायेंगे ॥

(६)

कांग्रेस ने एक ध्येय बताया, गान्धी ने रास्ता दिखलाया ।
नेहरू ने एक प्लान बना कर, हम सबको है ललकारा ॥
गाँव गाँव में मचे गुहार, घर घर की हो यही पुकार ।
अपने देश की नयी इमारत अपने हाथ बनायेंगे ॥
नींव में दब जायेंगे, दीवार में चुन जायेंगे ।
जबान नहीं हिलायेंगे, हम करके काम दिखायेंगे ॥

(७)

कतरा कतरा दरिया बनता, पाई पाई रुपया ।
रुपयों की चिन्ता छोड़ कर, हम पाई पाई जुटायेंगे ॥
गाँव गाँव में कर्म रूप गंगा को हम ले जायेंगे ।
टूटे घर बनायेंगे, उजड़े गाँव बसायेंगे ॥
बहता पानी रोक कर, काम में उसको लायेंगे ।
ऊसर बंजर जोत कर हम नये खेत लगायेंगे ॥

(१४३)

(८)

नयी नहरें, नये तालाब, कुएँ नये बनवायेंगे ।
करके ठीक पुरानों को पानी की कमी मिटायेंगे ॥
बड़ी मशीनें छोड़ कर हम लाखों हाथ चलायेंगे ।
पिछली त्रुटियाँ छोड़ कर हम अगला कदम बढ़ायेंगे ॥
हम गाँव गाँव जायेंगे नौकरशाही मिटायेंगे ।
प्रजातंत्रीय शासन हम करके काम चलायेंगे ।

(९)

सूखी रोटी खायेंगे, नंगे भी रह जायेंगे ।
कमर कसते जायेंगे, बेकार नहीं कहलायेंगे ॥
बेकारी को छोड़ कर हम देश का धन बढ़ायेंगे ।
निराशा को हटायेंगे, गरीबी को मिटायेंगे ॥
दलबन्दी को छोड़ कर हम काम करते जायेंगे ।
करके काम दिखायेंगे, जीवन सफल बनायेंगे ॥

(१०)

पच-वर्षीय योजना का राष्ट्रीय यज्ञ रचायेंगे ।
बूढ़े युवक, पुरुष और नारी सब काम की आहुति चढ़ायेंगे ॥
त्याग, सेवा, नम्रता से हम देश को उठायेंगे ।
सत्य, अहिंसा को अपनाकर हम विश्व शान्ति फैलायेंगे ॥
नेहरू के नेतृत्व में हम आगे बढ़ते जायेंगे ।
बातें नहीं बनायेंगे, हम करके काम दिखायेंगे ॥

—‘विजय कुमारी’

‘नव जीवन’ लखनऊ

२६ जनवरी, १९५५

